गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण विरचित उत्सवप्रतान

श्रीपुरषोत्तमजी

गोस्वामी
श्रीपुरुषोत्तमचरण
विरचित
उत्सवप्रतान
श्रीपुरषोत्तमजी

गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण विरचित उत्सवप्रतान (हिन्दी अनुवाद)

श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण तथा श्रीविट्ठलेशप्रभुचरणों को प्रणाम कर उत्सवोंके समयका युक्तियुक्त प्रतिपादन किया जाता है.

जन्माष्टमी

उत्सवोंमें प्रथम जन्माष्टमीके समयका निर्णय करना योग्य है, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भावोत्सव (श्रीकृष्णजन्माष्टमीका उत्सव) सब उत्सवोंका मूल है. इस श्रीकृष्णजन्माष्टमीके उत्सवका निर्णय श्रीविट्ठलेशप्रभुचरणोंने किया है. इसलिये प्रथम उस निर्णयका आशय ही स्पष्ट किया जाता है जो इस प्रकार है :

कलियुगने पैदा किये हुवे पण्डितोंके विवाद-कलहके प्रभावसे श्रीगोकुलाधीश नन्दनन्दनके प्रादुर्भावके दिनके विषयमें भी हृदयमें मालिन्य प्रवेश कर गया था जो श्रीप्रभुचरणोंको सह्य नहीं हुवा. अतएव उसे दूर करनेकेलिये श्रीप्रभुचरण श्रीगोकुलाधीशके प्रादुर्भावकी तिथिके निर्णयकी इस प्रकार प्रतिज्ञा करतें हैं :

पितृचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणके गलित मधुरसभरित चरणकमलयुग्मको प्रणाम कर जन्माष्टमीमें कौनसी अष्टमी व्रतमें ग्रहण करनी? इस संशयको मैं निवृत्त करता हूं.

इस श्लोकके उत्तरार्धमें "जन्माष्टमी का अष्टमी इति संशयान्" इतने अंशका अर्थ कौनसी जन्माष्टमी श्रीगोकुलाधीश जन्माष्टमी है? इस प्रश्नके हेतुभूत संशय है. उन संशयोंका स्वरूप इस प्रकार है :

प्रादुर्भावोत्सव तिथि विद्धा (सप्तमीके वेधसे युक्त) लेनी या अविद्धा (सप्तमीके वेधसे रहित लेनी) ?

यदि अविद्धा लेनी है तो उसके क्षय होने पर कैसी तिथिमें उपवास करना योग्य है इत्यादि.

ये संशय प्रस्तुत ग्रन्थमें आगे स्पष्ट होंगे.

श्रीकृष्णजन्माष्टमीका व्रत नित्य है या काम्य? एवं जन्माष्टमी जयन्ती भिन्न है या अभिन्न — इत्यादि विचार क्यों नहीं किया जाता है? इस प्रश्नके उत्तरकेलिए 'तत्र' से 'प्रपञ्च्यते'

पर्यन्त मूल ग्रन्थ है. इसका आशय यह है कि यदि जन्माष्टमी और जयन्तीके व्रत स्वरूपसे दोनों सर्वथा भिन्न माने जायें अथवा जन्माष्टमी व्रतमें और जयन्ती व्रतमें रोहिणी नक्षत्र साथ हो अथवा नक्षत्र साथ न हो ऐसी अष्टमी भिन्न-भिन्न प्रकारकी ली जाती है ऐसा माना जाए, दोनोमेंसे कोई भी पक्ष माना जाय, परन्तु जिस वर्ष जयन्तीका योग न बने, उस वर्ष जन्माष्टमीसे हि निर्वाह करना होगा. तात्पर्य यह है कि जयन्ती व्रत प्रतिवर्ष उपयोगमें आनेवाला अपरिहार्य नहीं है. अतएव इसका विशेष विस्तृत विवेचन यहां नहीं किया जाता है. यह जन्माष्टमीका नित्यत्व और जन्माष्टमी जयन्तीका भेद माधवाचार्य आदि धर्मशास्त्रके आचार्योंने सविस्तर किया है.

प्रश्न-उपर्युक्त आचार्योंके जयन्तीव्रतके विवेचनसे जन्माष्टमीके निर्णयमें होनेवाले अन्यान्य सन्देह भी निवृत्त हो जाएंगे, क्योंकि दोनोंही व्रत एक तिथिमें होनेवाले हैं, परस्पर सम्बन्ध रखते हैं. अतएव जन्माष्टमीव्रतके निर्णयका आरम्भ करना व्यर्थ है.

उत्तर-इसका तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण जन्माष्टमी सप्तमीसे विद्धा लेनी या अविद्धा? अष्टमीका क्षय हो तो कैसी तिथिमें उपवास करना? इस सन्देहका निवारण जयन्तीव्रतके विवेचनसे नहीं हो सकता, क्योंकि जयन्तीव्रतमें सप्तमीवेध त्याज्य नहीं है, जैसा कि आगे जयन्ती निर्णायक वचनोंसे मालूम होगा. अतएव जयन्तीविवेचनसे वेधत्यागका विचार मालूम नहीं हो सकता, इसके लिए अग्रिम जन्माष्टमीका निर्णय आवश्यक है.

अन्य मत- संशयमें प्रथम विद्धा प्रकारका नाम लिया है. विद्धाके निर्णयमें वेधका स्वरूप जानना आवश्यक है. एवं जन्माष्टमी-जयन्तीके भेदमें यह वेध भी एक कारण है. अतएव इसके द्वारा जन्माष्टमी और जयन्ती के भेदका निर्णय करनेकेलिये अष्टमीमें सप्तमीके वेधको ग्राह्य माननेवाले अन्य विद्धानोंके मतका अनुवाद श्रीप्रभुचरण करते हैं. इसका अर्थ यह है कि भगवान् श्रीकृष्णका आर्विभाव अष्टमीको अर्धरात्रिके समय हुआ था. इसलिये श्रीकृष्ण जन्माष्टमी और श्रीकृष्णजयन्तीके व्रतमें रात्रि प्राकट्यकाल कर्मकाल होनेसे रात्रिप्रधान है. और इस समय ही सप्तमीके दिन अष्टमीका रहना प्रशस्त है. इसमें वसिष्ठसंहिताका वचन प्रमाण है :

"यदि रोहिणी नक्षत्रसहित अष्टमी अर्धरात्रिके समय दीखे तो वह मुख्य समय है. इस समय भगवान् स्वयं प्रकट हुए हैं".

विष्णुरहस्यका वचन है कि :

“अर्धरात्रिके समय अष्टमी और रोहिणी नक्षत्र यदि वर्तमान हों तो उस समय किया हुवा भगवान् श्रीकृष्णका पूजन तीन जन्मोंके पापोंको नष्ट करता है”.

आदित्यपुराणका वचन है की

“अर्ध रात्रिके पहिले या पीछे कलामात्र समयमें भी यदि अष्टमी और रोहिणीका योग हो तो वह संपूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाली जयन्ती कही गई है”.

वराहसंहिताका वचन है की :

“यदि सिंह संक्रान्तिमें रोहिणीसहित कृष्णाष्टमी अर्धरात्रिके समय या उससे पहिले या पीछे कलामात्र समयमें भी हो तो वह जयन्ती है”.

आगे और भी ऐसे वचन कहे हैं.

इसमें दिखाये गये वचनोंका सिद्धान्तसम्मत तात्पर्य ‘तत्र’से प्रारम्भ कर ‘अभ्युपेयम्’ पर्यन्त ग्रन्थसे दिखाया जाता है. आशय यह है कि रात्रिके समय अष्टमी और रोहिणी का योग ग्राह्य बतानेवाले कई वचन हैं. इनमेंसे आदित्यपुराण, वराहसंहिता, योगीश्वर आदिके कुछ वचनोंमें ‘जयन्ती’ पद है, जिससे सिद्ध होता है कि यह योग जयन्तीव्रतमें आवश्यक है. अतएव रात्रिके सयम अष्टमी और रोहिणी का योग बतलानेवाले जिन वचनोंमें ‘जयन्ती’ पद नहीं है उनको भी जयन्तीव्रतके ही बोधक मानने चाहिये, क्योंकि दोनोंकी एकवाक्यता हो जाती है.

जयन्तीके बोधक सभी पूर्वोक्त वचनोंमें रात्रिके समय अष्टमी और रोहिणी का रहना आवश्यक बताया है. इससे सिद्ध होता है कि जयन्तीयोग रात्रिके समय अष्टमी और रोहिणी दोनोंके मिलनेसे बनता है, केवल अष्टमीके ही रहनेसे नहीं. अतएव “दिवा वा यदि वा रात्रौ” जैसे कुछ वचन जो रात्रिके समय केवल अष्टमीका रहना आवश्यक बताते हैं वे ‘जयन्ती’बोधक कैसे हो सकते हैं? ये तो श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके बोधक है. ‘यत्तु’से प्रारम्भकर “जयन्तीपरमिति ज्ञेयम्” पर्यन्त ग्रन्थका आशय यह है : “दिवा वा” वचनमें कहा है कि “यदि अहोरात्रमें कलामात्र समय भी रोहिणी नक्षत्र न हो तो जब रात्रिके समय और विशेष कर चन्द्रोदयके समय केवल अष्टमी भी हो तो जयन्ती व्रत करना चाहिये” इस वचनको भी जयन्ती परक मानना चाहिये, आशय यह है की जयन्तीव्रतकेलिये अर्धरात्रिके समय रोहिणी नक्षत्र और अष्टमी का योग मुख्य है, परन्तु जिस वर्ष यह योग न बने उस वर्ष अहोरात्रमें किसी भी समय कलामात्र भी रोहिणी नक्षत्र हो तो उस दिन जयन्तीका व्रत

करना चाहिये. यदि अहोरात्रमें सर्वथा रोहिणी न हो तो अर्ध रात्रिके समय केवल अष्टमी हो, उस दिन भी जयन्ती व्रत कर लेना चाहिये. पूर्ण जयन्तीयोग न बनने पर जयन्तीके व्रतका त्याग करना योग्य नहीं. यही "दिवा वा यदि वा रात्रौ" इस वचनका रहस्य है. तात्पर्य यह है कि यह वचन गौण जयन्तीयोगका बोधक है. यदि यह जयन्तीयोगका बोधक न हो तो इसमें 'इन्दुसंयुताम्' पदसे चन्द्रोदयके समय अष्टमी होनी चाहिये यह क्यों कहते! क्योंकि इससे जयन्तीव्रतमें चन्द्रकेलिये दिये जानेवाले अर्घ्यकी सूचना मिलती है. इसके अतिरिक्त "नास्ति चेद् रोहिणीकला" यह जो रोहिणी नक्षत्रका स्मरण किया है, इससे भी प्रमाणित होता है कि यह वचन जयन्तीबोधक है, क्योंकि रोहिणीका सम्बन्ध जयन्ती व्रतमें आवश्यक है, अतएव इसके अभावमें गौण जयन्ती स्वीकार की है. जन्माष्टमीके व्रतमें तो रोहिणीकी आवश्यकता नहीं है, जो कि "सऋक्षापि न कर्तव्या सप्तमीसंयुताष्टमी" इस वचनसे प्रमाणित होती है. अतएव "जन्माष्टमीके व्रतकेलिये अहोरात्रमें कलामात्र भी रोहिणी न हो तो" यह कहना अनुपयोगी है. एक बडा कारण यह है कि निम्नलिखित वचन प्रतिवर्ष जयन्तीव्रत करना चाहिये, ऐसा नित्यत्व कहते हैं, और रोहिणी-अष्टमीके योगसे बननेवाली जयन्ती प्रतिवर्ष मिल नहीं सकती, अतएव गौण जयन्तीयोगमें अर्थात् अर्धरात्रिके समय केवल अष्टमीकी सत्ता तक निमित्त मान ली गई है. अतः केवल अष्टमी उपवासमें स्वीकार करनी आवश्यक है, जयन्ती व्रतका विच्छेद नहीं करना. प्रतिवर्ष जयन्तीव्रतकी कर्तव्यता बतलानेवाले वचन ये हैं :

"हे धर्मपुत्र! मेरा भक्त पुरुष हो या स्त्री यदि विधिपूर्वक व्रत करे तो जयन्ती व्रतके शास्त्रोक्त पूर्णफलको प्राप्त करता है". (भविष्योत्तरपुराणजयन्तीकल्प वचन)

"अमान्त मासके अनुसार श्रावण कृष्ण अष्टमी अर्थात् भाद्रपद कृष्ण अष्टमी जो कि रोहिणी नक्षत्रसे युक्त है उसमें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रसन्नताकेलिये प्रतिवर्ष जयन्ती व्रत करना चाहिये".(स्मृत्यन्तरमें जयन्तीप्रकरणीय वचन)

विष्णुरहस्यका यह वचन भी गौण जयन्ती योगका बोधक है.

"जिस अहोरात्रमें मुर्हूतमात्र भी अष्टमी और रोहिणीका सम्बन्ध हो जावे तो उस पवित्र अष्टमीका उपवास करना चाहिये".

कुछ विद्वानोंने जो यह कहा है कि जयन्तीके व्रतमें जो निर्णय है वही जन्माष्टमीके व्रतमें भी है. परन्तु यह कथन पण्डितोंकी समालोचनाके आगे टिकनेवाला नहीं है. क्योंकि पद्मपुराणके निम्नलिखित वचनोंसे यह सिद्ध होता है कि जन्माष्टमीके व्रतमें सूर्योदयके समयका वेध देखना चाहिये और जयन्तीके व्रतमें अर्ध रात्रिके समयका वेध देखना चाहिये :

“पहिले दिन अष्टमी सप्तमीविद्धा हो और दूसरे दिन नवमी तिथिको सूर्योदयके समय यदि वह मुहूर्त पर्यन्त भी रहती हो तो वह श्रीकृष्ण जन्माष्टमी संपूर्ण है” (पद्मपुराण)

“यदि श्रीकृष्णजन्माष्टमी नवमीके दिन कलाकाष्ठा या मुहूर्त मात्र भी हो तो वही व्रतमें ग्रहण करने योग्य है. सप्तमीसहित अष्टमी ग्रहण करने योग्य नहीं” (स्कन्दपुराण)

‘यत्तु’ से लेकर ‘ग्राह्यः’ पर्यन्त ग्रन्थसे परमतका अनुवाद कर जो समाधान किया है इसका स्पष्टीकरण यह है कि जन्माष्टमी प्रकरणके वचनोंमें उपवासके अतिरिक्त ओर कोई भी अहोरात्र व्यापि व्रत नहीं है. और “पूर्वविद्धाऽष्टमी या तु” इस पूर्वोक्त वचनमें नवमीके दिन मुहूर्त मात्र भी अष्टमी हो तो सम्पूर्ण यानी अहोरात्रव्यापिनी माननी चाहिये, यह पूर्ण माननेका अतिदेश है. इससे साबित होता है कि जिस दिन सूर्योदयसे लेकर अहोरात्र व्यापिनी अष्टमी हो वह जन्माष्टमी व्रतोपवासकेलिये मुख्य काल है, जैसा कि “कर्मणो यस्य यः कालः तत्कालव्यापिनी तिथिः, तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्, उदयात् उदयात् प्रोक्ता हरिवासारवर्जिता” इस वृद्धयाज्ञवल्क्योक्त कर्मकाल शास्त्रमें बताया है. यदि जन्माष्टमीकी व्याप्ति (वर्तमान रहना) अहोरात्रमें न होकर शास्त्रके द्वारा बताये गये अहोरात्रके एकदेशमें हो तो वह पारिभाषिक व्याप्ति है. ऐसी व्याप्ति जन्माष्टमीव्रतकेलिये गौणकाल है. सर्वतिथि साधारण ऐसे गौण कालके निर्णयमें दो पक्ष हैं : एक पक्ष सूर्योदयव्यापिनी तिथिको ग्राह्य मानता है. दूसरा पक्ष सूर्यास्त व्यापिनी तिथिको ग्राह्य मानता है. ये दोनों पक्ष अग्रिम वचनोंसे साबित होते हैं.

पहिले पक्षका समर्थक बौधायनका वचन है :

“उपवासकेलिये सूर्योदयके समय रहनेवाली रात्रिव्रतकेलिये सूर्यास्तके समय रहनेवाली और एकवार भोजनमें (एकाशनव्रतमें) मध्याह्नके समय रहनेवाली तिथि लेनी चाहिये. सूर्योदयके समय यदि तिथि अल्प भी हो तो पूरी ही माननी चाहिये. सूर्योदय-समयके स्पर्शके बिना तिथि पूर्ण नहीं होती है”.

दूसरे पक्षका समर्थक “प्रायः प्रान्त उपोष्या” यह शिवरहस्यका वचन है :

“दैवीफल चाहनेवाले सूर्यास्तव्यापिनी तिथिमें उपवास करें”.

सर्व साधारण तिथिनिर्णयमें लिये जानेवाले इन दो पक्षोमेंसे किस पक्षका आदर जन्माष्टमीके निर्णयमें करना चाहिये? इस प्रश्नका उत्तर “पूर्वविद्धाष्टमी या तु” इस प्रातिस्विक् (तिथिविशेषनिर्णायक) वचनसे दिया गया है. तात्पर्य यह है कि पहिले दिनकी

सूर्यास्तव्यापिनी जन्माष्टमी बहुत अधिक समय रहनेवाली होने पर भी व्रतमें ग्राह्य नहीं है. दूसरे दिनकी सूर्योदयव्यापिनी बहुत अल्प समय रहनेवाली होने पर भी व्रतमें ग्राह्य है.

इस प्रकार जन्माष्टमी निर्णयमें सूर्यास्तव्यापिनी माननेवाले पक्षका निषेध किया गया है. यदि जन्माष्टमी व्रत रात्रिप्रधान होता तो सूर्यास्तव्यापिनी पक्षका निषेध न होता. क्योंकि रात्रिप्रधान व्रतोंमें तो पहले दिनको सूर्यास्तव्यापिनी तिथि ही, कर्मकालशास्त्र बौधायनवचन एवं शिवरहस्यवचनके, ग्रहण करने योग्य सिद्ध होती है. सिद्ध यह हुआ कि जयन्तीके समान जन्माष्टमीका निर्णय अर्धरात्रिके समयकी व्याप्तिसे नहीं हो सकता.

कलाकाष्ठाका अर्थ :

"कलाकाष्ठामुहूर्ताऽपि" इस पद्मपुराणके वचनसे अपरार्कको भी प्रत्युत्तर मिल गया, जो कि रोहिणी नक्षत्रसे हीन अष्टमी नवमीके दिन सूर्योदयके अनन्तर एक मुहूर्त तक रहती हो तो व्रतमें ग्राह्य है, अर्थात् मुहूर्तसे न्यून हो तो ग्राह्य नहीं, ऐसा अपरार्कने कहा था, सो ठिक नहीं है. कलाकाष्ठा रहने पर भी अष्टमी ग्राह्य है.

कुछ विद्धानोंने जो यह कहा था कि "कलाकाष्ठामुहूर्ताऽपि" इस वचनमें छोटे-छोटे कला-काष्ठा आदि समयोंका उल्लेख 'मुहूर्त'शब्दवाच्य त्रिमुहूर्तात्मक समयकी स्तुतिके लिये है. कला-काष्ठा सदृश अल्पतम समयोंकी व्याप्ति भी ग्राह्य है, इस आशयसे नहीं है. यह मत विचार करने पर ठीक नहीं मालूम होता. क्योंकि प्रत्येक तिथिके वेधका प्रमाण भिन्न-भिन्न है. जैसा कि "नागो द्वादशनाडीभिः" इत्यादि, पञ्चमी बारह घडियोंके, दशमी पन्द्रह घडियोंके और चतुर्दशी अठारह घडियोंके वेधसे उत्तरतिथिको दूषित करती है. इस वचनके समान 'कलाकाष्ठा' यह वचन भी जन्माष्टमी व्रतमें वेधका बोध करानेवाला विशेष वचन है. यह त्रिमुहूर्त व्याप्तिकी प्रशंसा करनेवाला नहीं हो सकता. यदि नवमीके दिन अष्टमी तीन मुहूर्तोंसे न्यून हो तो पहले दिनकी सप्तमीविद्धा अष्टमी लेनी, यह आशय होता तो स्कन्दपुराणके इस अग्रिम वचनमें सप्तमीके पलमात्र वेधका निषेध न होता. अतएव नृसिंहपरिचर्या और हरिवल्लभसुधोदयमें यह वचन उद्धृत है :

"हे ब्राह्मणश्रेष्ठ? शराबकी बूंदका भी स्पर्श होने पर गंगाजलके कलशका जैसे त्याग किया जाता है, वैसे ही सप्तमीका पलमात्रवेध होने पर भी अष्टमीका त्याग करे".

अपरार्कने भी कहा है कि '

'रोहिणी सहित अष्टमीमें त्रुटिमात्र भी सप्तमीका वेध हो तो वह अष्टमी ग्रहण करने योग्य नहीं है".

अष्टमीमें सप्तमीवेधकी प्राप्ति और अन्य मतोंकी समीक्षा :

1.पूर्वपक्ष-जन्माष्टमीमें सप्तमी वेधका निषेध मानना युक्तियुक्त नहीं है. क्योंकि निषेध प्राप्ति पूर्वक होता है. अर्थात् जिसमें प्रवृत्तिकेलिये पहले किसीके द्वारा प्रेरणा मिली हो, और प्रवृत्ति अनुचित हो, उसका निषेध किया जाता है. जैसे, लशुन पलाण्डु स्वादिष्ट है, इनके भोजनकेलिये राग (अभिलाष) प्रेरणा करता है, परन्तु यह प्रवृत्ति अनुचित है, इसलिये धर्मशास्त्र निषेध करता है. इस प्रकार सप्तमीवेधमें जन्माष्टमीव्रत करनेकेलिये किसीके द्वारा प्रेरणा नहीं मिलती है, अतएव निषेध नहीं हो सकता. यद्यपि अर्धरात्रिके समय अष्टमीको आवश्यक बतानेवाले वचनोंसे सप्तमीवेधमें व्रत करनेकेलिये प्रेरणा (प्राप्ति) मिलती है, परन्तु वे वचन जयन्तीके बोधक हैं, जन्माष्टमी व्रतके नहीं. अतएव जन्माष्टमी व्रतमें सप्तमीवेधकेलिये उनसे प्रेरणा नहीं मिल सकती, अर्थात् प्राप्ति नहीं है, फिर निषेध कैसा?

उत्तर यह है कि शास्त्रमें निषेधक 'नञ्' या 'न' अव्ययका क्रियाके साथ अन्वय (सम्बन्ध) होता है, वहां निषेध माना जाता है, और वहीं निषेध किया जाता है, उसकी किसी दूसरेके द्वारा प्राप्ति (विधान) होना आवश्यक है, परन्तु जहां 'नञ्' या 'न' का अन्वय (सम्बन्ध) शब्दके साथ होता है वहां निषेध न मानकर पर्युदास माना जाता है, अर्थात् वहां नञर्थका विधान नहीं, अनुवाद है. ऐसे स्थलमें जिसका पर्युदास किया जाता है उसकी पहले किसी दूसरेसे प्राप्ति यानी विधानकी आवश्यकता नहीं है, जैसी कि "भूमौ अग्निः चेतव्यो न अन्तरिक्षे न दिवि" इस श्रुतिमें आकाशका मध्य और स्वर्ग ऐसी वस्तु नहीं है कि जिसमें अग्निचयन का विधान कोई कर सके. अतएव इसमें अग्निचयनके साथ न मानकर 'अन्तरिक्षे' और 'दिवि' पदोंके साथ माना गया है, जिसमें उक्तश्रुतिका अर्थ यह निश्चित हुआ है कि अन्तरिक्ष और स्वर्गसे भिन्न पृथिवी पर अग्निका चयन करना चाहिये यह नञर्थका अनुवाद है, इसी प्रकार सप्तमीवेधको अग्राह्य बतानेवाले वचनोंमें भी पर्युदास है, नञर्थका अनुवाद है, निषेध नहीं है, अतएव यहां प्राप्तिकी (विधानकी) आवश्यकता बताना उचित नहीं है. अथवा कभी-कभी मनुष्य भ्रमवश परधर्मके आचरणमें प्रवृत्त हो जाता है, इसी प्रकार सम्भव है कि भ्रमवश कोई सप्तमीविद्धामें भी व्रत करनेकेलिये उद्यत हो जाय. इस प्रकार भ्रममूलक प्राप्ति है. अतएव यदि सप्तमीवेधका निषेध भी माना जाय तो युक्तियुक्त ही है.

अब दूसरी शंका यह है कि जयन्ती और जन्माष्टमीव्रत भिन्न-भिन्न हैं. इनसे सम्बन्ध रखनेवाले विधिनिषेध भी इनके भिन्न-भिन्न प्रकरणोंमें पढे हुए हैं. इसलिये सप्तमीवेधको स्वीकार करनेवाले जयन्ती प्रकरणके वचनोंसे जन्माष्टमीमें भी सप्तमीवेध लेनेका भ्रम नहीं

हो सकता, क्योंकि प्रकरणोंके भिन्न-भिन्न होनेसे इस भ्रमका वारण हो जाता है, अतएव उपर्युक्त भ्रममूलक प्राप्तिकी उपपत्ति नहीं हो सकती.

इसका उत्तर यह है : पूर्व मीमांसामें शास्त्रके तात्पर्यका निर्णय करनेकेलिये श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण, स्थान और समाख्या नामक छः विभाग बताये हैं. युक्तियां उत्तरोत्तर निर्बल हैं. इनमें 'श्रुति'का अर्थ निरपेक्ष शब्द है. 'लिंग'का अर्थ अभिप्रायप्रकाशन करनेवाला शब्द और अर्थकी शक्ति है. एवं 'प्रकरण'का अर्थ पारस्परिक अपेक्षा है. श्रुति और लिंग दोनों बलिष्ठ होनेसे प्रकरणका बाधकर प्रकरणविरुद्ध अर्थका भी निश्चय करा देते हैं. अतएव सम्भव है कि जयन्तीप्रकरणके किसी वचनसे जन्माष्टमीव्रतमें भी सप्तमीका वेध उपादेय साबित हो जाय. अतएव स्पष्ट शब्दोमें सप्तमीवेधका निषेध होना आवश्यक है.

2.किसी विद्वानने जन्माष्टमी व्रतको रात्रिप्रधान स्वीकार कर यह कहा कि सप्तमीवेधको हेय बतानेवाले वचन जन्माष्टमी व्रतके प्रकरणमें और उपादेय बतानेवाले जयन्तीके प्रकरणमें माने जायें ऐसी व्यवस्था करना अयोग्य है, अर्थात् दोनों प्रकरण भिन्न-भिन्न मानना अनुचित है. क्योंकि इसमें सब वादियोंकी सम्मति नहीं है. परन्तु यह प्रतिवादीका कथन अत्यन्त तुच्छ है. कारण यह कि जन्माष्टमी और जयन्ती के वचनोंमें एक नियमित विरोध देखा गया है. प्रकरणभेदकी कल्पना न कर इनकी एकवाक्यता करना अशक्य है.

जयन्ती-जन्माष्टमीकी अर्धरात्रिमें व्याप्ति ः

3.फिर पूर्वपक्ष है कि जयन्ती और जन्माष्टमी के वचनोंमें कोई पारस्परिक निश्चित विरोध नहीं है. ये दोनों व्रत रात्रिप्रधान हैं. जिस दिन अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहती हो उसी दिन ये दोनों व्रत हो सकते हैं, दूसरे दिन नहीं. अतएव जब पहले दिन सप्तमीके बाद प्रविष्ट हुई अष्टमी अर्धरात्रिके समय रहती हो और दूसरे दिन अर्धरात्रिके समय न रहती हो, ऐसे अवसर पर सप्तमीवेधको ग्राह्य माननेवाले वचन सार्थक हैं. जबकि पहले दिन अर्धरात्रिके नियत समय बाद अष्टमी आती हो और दूसरे दिन अर्धरात्रिके नियत समयमें रहती हो, तब सप्तमीके वेधको हेय माननेवाले वचन सार्थक हैं. जब दोनों दिन अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहती हो, अथवा न रहती हो, तब सप्तमीके वेधको ग्राह्य-अग्राह्य माननेवाले भिन्न-भिन्न वचनोंका परस्पर विरोध रहेगा. अथवा दोनों दिन अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहती हो या दूसरे दिन ही रहती हो, तब सप्तमीवेधका निषेध करनेवाले वचन सार्थक हैं. जब कि पहले दिन ही अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहती हो तब सप्तमीवेधको ग्राह्य माननेवाले वचन सार्थक हैं, जब दोनों दिन अर्धरात्रिके समय न रहती हो तब विरोध है. ऐसी व्यवस्था करने पर

जन्माष्टमी और जयन्ती के वचनोंका पारस्परिक विरोध अनियत सिद्ध हो जाता है, अर्थात् सार्वदिक और सार्वत्रिक नहीं रहता है.

इसका खण्डन यह है कि जन्माष्टमी और जयन्ती के व्रतमें अष्टमी अर्धरात्रिके समय रहनेवाली ग्राह्य है यह तो "कर्मणो यस्यः यः कालः तत्कालव्यापिनी तिथिः" इस कर्मकाल-शास्त्रसे ही सिद्ध हो जाता है, फिर यह कर्मकाल-शास्त्र एवं अर्धरात्रिके समय अष्टमीकी सत्ता आवश्यक बतानेवाले विशेषवचन इन दोनोंकी क्या आवश्यकता? यदि यह कहा जाय कि कर्मकाल-शास्त्र सर्वसाधारण होनेसे सामान्यशास्त्र हैं, और खास अष्टमी तथा जयन्तीके सम्बन्ध रखनेवाले वचन विशेषशास्त्र हैं, इस प्रकार सामान्य-विशेषभावसे दोनोंका उपयोग है, तो यह भी कहना ठीक नहीं. क्योंकि सामान्य शास्त्रका क्षेत्र विस्तृत होता है और विशेष शास्त्रका क्षेत्र संकुचित होता है. यदि दोनोंकी एकवाक्यता की जायगी तो सामान्य शास्त्र संकुचित होकर विशेषके रूपमें परिणीत हो जायगा. जैसा कि "पुरोडाशं चतुर्धा करोति" इस श्रुतिके अनुसार पुरोडाश नामक आटेके गोलेके चार भाग करना, सर्वसाधारण पुरोडाशोंके साथ सम्बन्ध करने योग्य है, इस लिये उक्त श्रुति सामान्य-शास्त्र है, परन्तु "आग्नेयं चतुर्धा करोति" इस विशेषशास्त्रके साथ एकवाक्यता होने पर संकुचित होकर विशेषशास्त्र बन जाता है. जिससे केवल आग्नेय पुरोडाशका ही चतुर्धाकरण होता है, इस प्रकार विशेषशास्त्र बन जाने पर कर्मकालशास्त्रका सर्वसाधारण कर्मोंके साथ सम्बन्ध छूट जायगा. "यस्य यः तत्काल" इत्यादि यत् तत् शब्दोंके प्रयोगसे सामान्यशास्त्रका बोध कराया है, इसका बाध हो जायगा. यदि सर्वसामान्य कर्मकाल-शास्त्रका संकोच न किया जायगा तो उपर्युक्त विशेषशास्त्रोंके साथ इसकी एकवाक्यता न होगी, विरोध बना ही रहेगा.

4.व्रतादिकर्मोंके प्रारम्भ समयमें व्रततिथि रहनी चाहिये इस आशयसे कोई वचन पढे गये हैं. कोई वचन संकल्पके समय व्रततिथि रहनी चाहिये इस विषय पर जोर देते हैं. कोई वचन जिस दिन अधिक समय तक व्रततिथि रहै उस दिन व्रत करना चाहिये इस तात्पर्यको समझाते हैं. इन उपर्युक्त निमित्तोमेंसे अधिकसे अधिक निमित्त मिलना जिस दिन सम्भव हो उस दिन व्रत करना चाहिये. इस प्रकार व्यवस्था कर निर्णयग्रन्थलेखक व्यवस्थित विकल्पसे विरोधका परिहार करते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है. क्योंकि जो अर्धरात्रिके समय होनेवाली पूजाको प्रधान मानते हैं, उनके मतमें कर्मके प्रारम्भका समय अर्धरात्रि है, इस लिये सूर्योदय व्यापिनी अष्टमीको ग्राह्य बतानेवाले वचन कर्मके उपक्रम समयकी प्रधानता कहनेवाले वचन विषयकी व्यवस्था नहीं कर सकते. अतएव दोनोंका परस्पर विरोध अवश्य रहेगा. कर्मकाल शास्त्रसे भी अर्धरात्रिमें रहनेवाली अष्टमी ग्राह्य सिद्ध होगी और अर्धरात्रव्यापिनी अष्टमी लेनेवाले खास विशेषवचनोंसे भी यही सिद्ध होगी. यदि

एकवाक्यता की जाय तो दोनोंका उपयोग तुल्य होनेसे कोई भी एक अनुवादक होनेसे अप्रमाण सिद्ध होता है, इस लिये कर्मकालशास्त्र इसमें विशेष उपयुक्त न होनेसे ही उदासीन ही रहता है. जो पूजाको प्रधान न मानकर उपवासको प्रधान मानते हैं, उनके मतमें भी जब अर्धरात्रिके समय पहले दिन अष्टमी अधिक होगी और दूसरे दिन अर्धरात्रिके समय संकल्प करने योग्य अल्प समयमें होगी तो अधिक व्याप्ति और संकल्पकाल इन दोनों भिन्न-भिन्न निमित्तोंको लेकर प्रवृत्त हुए वचनोमें परस्पर विरोध अवश्य रहेगा. इस प्रकार पूर्वाक्त दोनों पक्षोमें कभी ऐसा किया जाय और कभी वैसा किया जाय इस आकृतिका विकल्पदोष स्वीकार करना पडेगा.

5.यदि यह कहा जाता है कि परस्पर विरुद्ध वचनोंसे व्रतके भिन्न-भिन्न दिन निश्चित होने पर भी जिस दिन रोहिणी नक्षत्रका योग हो उस दिन व्रत किया जाय तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि जन्माष्टमी व्रतके निर्णयमें रोहिणीका सम्बन्ध अनुपयोगी है, जो कि इस निम्नलिखित वचनसे प्रमाणित होता है. “याः काश्चित् तिथयः प्रोक्ताः” इत्यादि. “जो कोई तिथि या नक्षत्रोंके सम्बन्धसे पुण्यजनक मानी गई है, वहां उन नक्षत्रोंसे युक्त तिथियोमें ही व्रत करना चाहिये”. यह नियम श्रवण और रोहिणी से भिन्न नक्षत्रोंके लिये है, जिस दिन अर्धरात्रिमें अधिक समय अष्टमी रहे वह दिन लिया जाय ऐसा भी निर्णय नहीं कर सकते. क्योंकि ऐसा माननेमें मानसिक कल्पनाके अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं है. एवं दोनों दिन अर्धरात्रिमें समान समय तक जब अष्टमी रहेगी तो दोष वैसा ही रहेगा.

6.सप्तमीविद्धामें व्रतका निषेध करनेवाले वचनोंने “कर्मणो यस्य यः कालः” इस सामान्य कर्मकालशास्त्रका जन्माष्टमीके विषयमें बाध कर दिया, उसका प्रतिप्रसव यानी पुनःप्रवृत्ति अष्टमीकी मध्यरात्रिमें व्याप्ति स्वीकार करनेवाले विधिवचन करते हैं. यह व्यवस्था भी स्वीकार करने योग्य नहीं है. क्योंकि सप्तमीवेधके निषेधक वचन कहीं भी स्थान न मिलनेसे व्यर्थ हो जायेंगे. जब कि इनका तात्पर्य कर्मकालशास्त्रके निषेधमें है तो इनका उपयोग विद्धाष्टमीके स्थलमें ही होगा जो उपयोग आभासमात्र है. कारण यह कि ऐसे निषेध करनेकी अपेक्षा तो निषेध न करना अच्छा, जो पुनःप्रवृत्तिके (प्रतिप्रसवके) लिये वचन न पढने पडे. पहले कीच लपेटना और बादमें धोना इसकी अपेक्षा तो पहले कीच न लपेटना अच्छा. एवं ऐसा करनेसें तो निषेधक और पुनःप्रस्तावक दोनों प्रकारके वचन व्यर्थ हो जाते हैं. केवल सामान्यकर्मकाल शास्त्रका ही यथार्थ उपयोग साबित होता है. इसीसे पहले विधिविधान और बादमें निषेध यह व्यवस्था भी अग्राह्य सिद्ध हो जाती है. इसी प्रकार वारसे निर्णय करना भी अयोग्य है, क्योंकि वार केवल उपलक्षण है, और प्रतिवर्ष नियत समयपर मिल नहीं सकता. चन्द्रोदय भी व्रतका निश्चायक नहीं, केवल उपलक्षक है.

सिद्धान्तसम्मत पक्षमें अन्य अनेक वादियोंकी सम्मति न होना तो हानिकारक नहीं है. अन्धे सौ भी इकट्ठे हों, वस्तु नहीं देख सकते. भगवानकी महामाया बडे-बडे ज्ञानियोंके चित्तको भी मोहमें डाल देती है. भगवानके शरणमें जानेवाले भगवद्दास ही इससे मुक्त रहते हैं. (मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते) इस विरोधके परिहारकेलिये जन्माष्टमी और जयन्तीका भेद मानकर पूर्वोक्त व्यवस्था स्वीकार करने योग्य है. जन्माष्टमीव्रत रात्रिप्रधान मानना प्रमाणशून्य है.

7.सूर्योदयके समय जन्माष्टमीका रहना पुराणान्तर सम्मत है, जैसाकि स्कन्दपुराणके इस अग्रिम वचनसे मालूम होता है "उदये चाष्टमी किञ्चित् नवमी सकला यदि" द्वैतनिर्णयमें भगवद्भास्करने कहा है. इस वचनमें जो 'उदय' पद है इसका अर्थ चन्द्रोदय है, क्योंकि ऐसा अर्थ माननेसे "तारापत्युदये सति" इत्यादि चन्द्रोदयव्यापिनी अष्टमी बतानेवाले वचनोंके साथ इसकी एकवाक्यता हो जाती है. सब वचनोंका एक मूल जयन्तीपरत्व निश्चित हो जाता है यह लाधव है. ऐसा एक पक्ष द्वैतनिर्णय और भगवद्भास्करमें कहा है. परन्तु यह असंगत है. 'उदय'का अर्थ चन्द्रोदय हो तो उदयके समय कुछ अष्टमी हो और नवमी पूरी हो यह कैसे कह सकते हैं! सूर्योदयसे चन्द्रोदय तक छः प्रहर होता है. इतने लंबे समय तक रहनेवाली अष्टमीके सामने केवल रात्रिकी शेष दो प्रहरोमें रहनेवाली नवमी पूरी कैसे कही गई है! और ऐसा कहना भी निरर्थक है, क्योंकि चन्द्रोदयके समय जब कुछ ही अष्टमी रही तो शेष समयमें नवमी रहेगी यह स्वयंसिद्ध है. कालतत्त्वविवेकमें उपर्युक्त स्कान्दवचनके 'उदय' पदकी व्याख्या करते हुए कहा है कि यहां 'उदय' पदका अर्थ सूर्योदय मालूम होता है. अतएव द्वैतनिर्णय और भगवद्भास्करके मतमें इन "उदये दशमी किञ्चित्" वचनोंका विरोध अवश्य रहेगा.

अब प्रकृत विचार करते हैं.

शंका : सप्तमीवेधका विचार व्रत करनेमें उपयोगी है, और व्रतका स्वरूप पूर्वोक्त दोनों प्रकारके विधिवाक्योमेंसे कोई एक विधिसे होता है. जन्माष्टमी और जयन्ती दोनोंके विधिवाक्योमें भगवानका प्रादुर्भाव ही एक निमित्त है. निमित्त एक होनेसे कई वादियोंने जन्माष्टमी और जयन्ती के व्रत भिन्न-भिन्न नहीं माने हैं. केवल नाम और तिथि के प्रकारमें भेद होने पर भी जयन्तीविधायक वाक्योमें रोहिणी नक्षत्ररूप गुणके सम्बन्धसे फलश्रुति होनेसे जयन्तीके साथ 'व्रत'पद कहीं नहीं है. अतएव व्रतोपयोगी वेधका विचार करना निरर्थक है.

उत्तर : इस शंकाका निराकरण करनेकेलिये विष्णुधर्मोत्तरका अग्रिम वचन प्रदर्शित किया जाता है जो वचन व्रतके प्रयोजकभेद और स्वरूपभेद आदिको प्रमाणित करता है. वचन-"रोहिणीसहिता" इत्यादि. इसका विवेचन 'यत्तु'से लेकर 'व्रतपरमेव' तक है, जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है-तीन चरण 'अर्धरात्राधः' तकका आशय यह है कि भाद्रपद कृष्णमें सप्तमीके दिन अर्धरात्रिसे पूर्व रोहिणीसहित अष्टमी होती है, वह जयन्ती है. इसके बाद 'कलया'से 'हरिरीश्वरः' तक तीन चरण हैं. इनमें नैयायिक संमत तर्कके दिखलानेवाले अंशका यानी व्याप्यारोपका वर्णन है. इनका आशय यह है कि "यदि उस समय विश्वके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णका जन्म हुआ हो तो उस समय उपवास करें और जागरण करें". 'तमेव'से लेकर 'जागरम्' पर्यन्तके भागसे तर्कके आपाद्य अंशका (व्यापकारोपका) वर्णन है. पूरे पदोंका तात्पर्य यह है कि भाद्रपद कृष्ण सप्तमीके दिन अर्धरात्रिसे पूर्व प्रारम्भ होने वाले अष्टमी और रोहिणी के योगमें यदि भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए हो तो उपवास और जागरण करे. तादृश योगमें प्रकट हुए ही नहीं इसलिये उपवास और जागरण की आवश्यकता तादृश योगमें नहीं. तब आगे क्या करना? तो "अर्धरात्रे तु"से लेकर 'प्रवर्तयेत्' पर्यन्त चार चरणोमें 'तु' शब्दसे भगवानके जन्मकाल होनेकी शंकाका निराकरण करते हुए जयन्तीका स्वरूप बताकर उस समयके कर्तव्यका निर्देश करते हैं. इसका आशय यह है कि अर्धरात्रिके समय चन्द्रका उदय होने पर यह तो योग है. सप्तमी, अष्टमी, अर्धरात्रि, चन्द्रोदय, रोहिणीनक्षत्र——इन सबके मिलनेसे जयन्तीयोग बनता है, जैसा कि गंगादशहराका योग दशके मिलनसे बनता है. इस जयन्तीयोगमें स्नानकर पवित्र होकर चित्तस्थिरतापूर्वक भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करनी चाहिये. जिसका विधान 'पूजां प्रवर्तयेत्' इस विधिके द्वारा पृथक् किया गया है. जन्माष्टमीके व्रतमें तो भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव ही प्रयोजक है, और इसमें उपवास करना चाहिये, जिसका विधान 'उपवसेत्' इस विधिके द्वारा पृथक् किया गया है. इस प्रकार जयन्ती और जन्माष्टमी व्रतके प्रयोजक और मुख्य कर्तव्य भिन्न-भिन्न होते हैं. अतएव जयन्ती-जन्माष्टमीका भेद स्पष्ट है. यद्यपि "तमेव उपवसेत् कालम्" यह विधि तर्ककी अंगभूत आपाद्य कोटिके भीतर है, इसलिये अनुवाद है, विधि नहीं है, परन्तु यह अनुवाद विधिका है, जब कि अन्यत्र कहीं विधि है तब उसका यह अनुवाद किया गया है, अतएव इससे विधिका अनुमान हो सकता है. यद्यपि ब्रह्माण्डपुराणके "अभिजिन्नामनक्षत्रम्" वचनसे जन्माष्टमी और जयन्ती अभिन्न (एक) मालूम होती है क्योंकि, भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव जिस रात्रिको हुआ उसका नाम जयन्ती बताया है. तथापि "अर्धरात्रे तु योगोऽयम्" इत्यादि दूसरे वचनोंसे मालूम होता है कि अष्टमी रोहिणी आदिका योग 'जयन्ती' शब्दका प्रवृत्तिनिमित्त है, न कि भगवानका प्रादुर्भाव. इसलिये जन्माष्टमी और जयन्ती भिन्न-भिन्न मानना योग्य है. जिस विद्वानने यह शंकाकी कि

"यदि जन्माष्टमी और जयन्ती भिन्न-भिन्न मानी जावेगी तो जिस वर्ष जयन्तीयोग न बने उस वर्ष जयन्तीव्रत न होनेसे दोष लगेगा"

इसका भी समाधान उपर्युक्त कथनसे हो गया. क्योंकि योग जब प्रतिवर्ष न बने तो योग निमित्तक जयन्तीव्रत नित्य कैसे हो सकता है! और जो नित्य नहीं तो इसके न करने पर दोषकी कल्पना भी कैसे हो सकती है! यदि आग्रहवश पूर्वोक्त योगमूलक भी जयन्तीव्रत नित्य मान लिया जाय तथापि सप्तमीविद्धा अष्टमीमें भगवानका जन्म नहीं हुआ यह "अविद्धायां तु सर्क्षायां जातो देवकीनन्दनः" इस ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके वचनसे प्रमाणित होता है. इसलिये जब सप्तमीविद्धा हो तब योगभंग हो जानेसे उपवास नित्य नहीं कहा जा सकता. सप्तमीके वेधके रहित अष्टमीमें जिस वर्ष जयन्तीयोग आये, उस वर्ष फलका अतिशय समझना चाहिये. परन्तु जयन्तीव्रत नित्य नहीं है.

माधवाचार्यने अपने कालमाधव ग्रन्थमें "अर्धरात्राद् अधश्चोर्द्ध्वम्" यह आदित्यपुराणका वचन एवं "रात्र्यर्धपूर्वा परगा" यह वराहसंहिताका बचन दिखाकर अठारह निमेषोंकी एक काष्ठाओंकी एक कला होती है, जो पलका तृतीय भाग है, इस प्रकार कलाकी व्याख्याकी. बादमें अहोरात्रके एकदेशमें रहनेवाली खण्डतिथिरूपा श्रीकृष्णजन्माष्टमी दो प्रकारकी बताई, सप्तमीसे युक्त पहेले दिन, और नवमीसे युक्त दूसरे दिन. सप्तमीयुक्त अष्टमीके दिन रात्रिके पूर्वार्ध अन्तिमभागमें कमसे कम कलामात्र समय भी अष्टमी रहना आवश्यक है. इस प्रकार अष्टमीकी कलाका विधान "सप्तम्यामर्धरात्राधः" यह विष्णुधर्मोत्तरका वचनतात्पर्य दिखाया, परन्तु उक्तवचनका ऐसा तात्पर्य तब सम्भव है जब कि "सप्तम्यामर्धरात्राधः" इस अर्ध श्लोकके बाद "तत्र जातो जगन्नाथः" यह अर्धभाग न होकर "तमेवोपवसेत् कालम्" यह अर्धभाग हो. वर्तमान परिस्थितिमें तो इसका हमने जो अभी बताया वही अर्थ सरल मालूम होता है. "अविद्धायां तु सर्क्षायाम्" इस ब्रह्मवैवर्त वचनके अनुसार सप्तमीविद्धामें भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव नहीं हुआ यह निश्चित है, इसलिये इसे तर्करूप माननेके सिवाय ओर कोई गति नहीं है. यदि यह कहा जाय कि 'रोहिणीसहिता'से लेकर 'यदा भवेत्' तकके भागसे कदाचित् ऐसा समय हुआ हो इस प्रकार सम्भवित कालका अनुवाद किया गया है और "तत्र जातो जगन्नाथः" इस अर्धसे उपवासमें हेतुरूपसे भगवानके तत्कालीन प्रादुर्भावका वर्णन है, तो यह भी ठीक नहीं. क्योंकि सम्भावित कालमें भूतार्थ काल्पनिक होता है, उसमें यथार्थ घटनाका कथन अनुरूप नहीं हो सकता. यदि "सप्तम्यामर्धरात्राधः कलयापि यदा भवेत्" इस अर्ध भागमें 'यदा' पदके और 'भवेत्' पदके बीचमें 'स्थिता' पदका अध्याहार किया जाय और इस भागका अन्वय 'तत्र जातः' इस श्लोकके साथ किया जाय, 'भवेत्' इस शेष रहे एक क्रियावाचक शब्दका 'तमेवोपवसेत्' इस पार्श्ववर्ती भागसे अन्वय हो तब यह अक्षरार्थ बन सकता है कि

सप्तमीके दिन रात्रिपूर्वार्धके अन्तिम भागमें जब कलामात्र समय रोहिणीयुक्त अष्टमी थी, तब भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव हुआ. इसलिये ऐसा योग जब हो तब उपवास और जागरण करे. परन्तु इस प्रकार ग्रन्थलापनमें 'स्थिता' पदके अध्याहारका दोष है, तथा कभी भगवानका प्रादुर्भाव सप्तमीविद्धा अष्टमीमें हुआ और कभी सप्तमीवेधरहित अष्टमीमें हुआ ——इस प्रकार व्रतके मूलभूत दो समयदर्शक श्रुति कल्पना करनी पडती है, अतएव ऐसा आग्रहियोंके सामने तो सत्पुरुषोंको मौन रखना योग्य है. और भी द्वैतनिर्णय और भगवद्भास्करने भविष्यत्पुराण और विष्णुधर्मोत्तरके वचनोंका प्रथम उपन्यास कर बादमें इस अदृष्टपूर्वक्रमसे नवीन पाठ लिखा : "रोहिण्यामर्धरात्रे तु" "प्राजापत्यर्क्षसंयुता" "अर्धरात्रे तु योगोऽयम्" "रोहिणीसहिता कृष्ण" "अर्धरात्रादधश्चोर्द्ध्वं कलयापि यदा भवेत्" तत्र जातो जगन्नाथः. इसके बाद "तमेवोपवसेत् कालम्" यह अर्धभाग नहीं लिखा. परन्तु ऐसा पाठ कालमाधव आदि प्राचीन ग्रन्थोमें एवं अर्वाचीन कालतत्त्व विवेकमें देखा नहीं. पुराणोंके वाक्योंका परस्पर मिश्रणकर लिखा है. ऐसे पाठमें भी सम्भावित कालमें भूतपूर्व ऐतिहासिक घटनाका उपन्यास नहीं हो सकता यह उपर्युक्त दोष अखण्ड ही है. एवं ऐसे पाठभेद पर भी उनके भक्त ही विश्वास कर सकते हैं. सार यह है कि "अविद्धायां तु सर्क्षायाम्" इस ब्रह्मवैवर्तपुराणके वचनका विरोध होनेसे 'रोहिणीसहिता' इस विष्णुर्धोत्तर वचनका तात्पर्य अष्टमी और रोहिणी के सम्बन्धसे जयन्तीयोग बनता है इस कथनमें है, विद्धामें भगवानका प्रादुर्भाव बतानेमें नहीं है.

यह भी उचित नहीं कि किसी कल्पमें भगवानका अवतार विद्धामें हुआ और किसी कल्पमें शुद्धामें हुआ ——ऐसी व्यवस्था स्वीकार करली जाय. क्योंकि भगवानके प्रादुर्भावके द्विघटिकात्मक निशीथ मुहूर्त समाप्त होने पर नन्दरायजीके घर योगमायाका जन्म हुआ था ऐसा "यदा बहिर्गन्तुमियेष" इस दशमस्कन्धीय वचनकी व्याख्यामें आचार्यचरणोंने स्वीकार किया है. और योगमायाका जन्म नवमीमें हुआ है यह भविष्यपुराणके "नवम्यां योगविप्रायाः" इस वचनसे प्रमाणित होता है. वचनका आशय यह है : भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव अष्टमीमें और योगमायाका नवमीमें हुआ है. इसलिये बुधवार रोहिणीनक्षत्र और नवमी से युक्त अष्टमीमें उपवास करना चाहिये.

विष्णुपुराण पञ्चम अंश प्रथमाध्यायमें और ब्रह्मपुराणका 'प्रावृद्काले' वचन (भगवानने योगमायासे इस प्रकार कहा :) "वर्षाकालमें अमान्त श्रावण कृष्णाष्टमीकी अर्धरात्रिके समयमें जन्म ग्रहण करूंगा, नवमीमें तेरा जन्म होगा". एक ही दिन सूर्योदयके अनन्तर कुछ समय सप्तमी रहे, फिर अष्टमी प्रारम्भ होकर रात्रिपूर्वार्धके बाद कुछ मिनटोमें ही समाप्त हो जावे और नवमी प्रारम्भ हो जाय यह सर्वथा सम्भव नहीं है. अवम तिथिकी

घडियां इतनी कभी नहीं होती है. अतएव श्रीमद्भागवत, भविष्यपुराण, विष्णुपुराण और ब्रह्मपुराण इन चारों पुराणोंके उपर्युक्त वचनोंकी एकवाक्यतासे भगवानका प्रादुर्भाव सप्तमीविद्धा अष्टमीमें नहीं माना जा सकता. 'रोहिणीसहिता' यह विष्णुधर्मोत्तरका वचन केवल जयन्तीयोगका बोधक है यही स्वीकार करना, कालतत्वविवेक जो कल्पभेदसे प्रादुर्भाव समयको भिन्न-भिन्न मानता है उसका निराकरण भी इसीसे हो गया. "अष्टमी रोहिणीयुक्ता निश्यर्धेदृश्यते यदि" इस वसिष्ठ संहिताके वचनमें "अर्धरात्रिके समय रोहिणीयुक्त अष्टमीमें भगवानका प्रादुर्भाव हुआ था" इस प्रकार केवल प्रादुर्भावके समयका बोध कराता है. वह अष्टमी विद्धा थी या अविद्धा यह विवेचन इसमें नहीं है. अतएव इसके आधार पर सप्तमीविद्धा अष्टमीमें भगवानका प्रादुर्भाव हुआ यह आग्रह करना योग्य नहीं.

पूर्वोक्त ग्रन्थसे यह सिद्ध हुआ :

1.विद्धा अष्टमी (विद्धन्यूना)-सूर्योदयके समय सप्तमी हो और बादमें अर्धरात्रिसे पूर्व किसी समय अष्टमीका प्रारम्भ हो जाय तो वह विद्धा अष्टमी है.

2.शुद्धा अष्टमी(शुद्धन्यूना)-सूर्योदयके समयसे प्रवृत्त रहती हो वह शुद्धा अष्टमी है.

3.विद्धाधिका अष्टमी-जो अष्टमी सप्तमीके दिन अर्धरात्रिसे पूर्व प्रारम्भ होकर दूसरे दिन भी सूर्योदयके बाद रहती हो वह विद्धाधिका अष्टमी है.

4.शुद्धाधिका अष्टमी-जो अष्टमी दोनों दिन सूर्योदयके समय रहती हो वह शुद्धाधिका अष्टमी है.

5.निशीथव्यापिनी विद्धाधिका-जो सप्तमीके दिन अर्धरात्रिसे पूर्व प्रारम्भ होकर दूसरे दिन भी अर्धरात्रिपर्यन्त रहती हो वह निशीथव्यापिनी विद्धाधिका अष्टमी है.

6.निशीथाव्यापिनीविद्धाधिका-जो पहले दिन अर्धरात्रिसे पूर्व प्रारम्भ होकर दूसरे दिन अर्धरात्रिसे पूर्व ही समाप्त हो जाती हो वह निशीथाव्यापिनी विद्धाधिका अष्टमी है.

'तत्रापि' इस मूल स्थित 'तत्र' पदसे इससे अव्यवहित पूर्व पढे गये 'विद्धाधिका' 'शुद्धाधिका' इन दोनों भेदोंका यदि परामर्श हो तो भी शुद्धाधिकाके दो भेद और बढ जानेसे स'लित संख्या 8 आती है, परन्तु मूल प्रतानमें संख्या 6 बताई है. इसका कारण यह है कि शुद्धाधिका सर्वदा निशीथव्यापिनी ही होती है, अतएव इसके भेद नहीं कहे जा सकते. परन्तु विद्धासमा शुद्धासमा भेद एकादशी आदि व्रतोंके प्रकरणोंमें पुराणप्रसिद्ध होने पर भी आधुनिक ज्योतिषियोंको इतना सूक्ष्मकालका पत्ता नहीं लगता है इसलिये इनको

स्वीकार्य नहीं है. श्रीप्रभुचरणोक्त 'विद्धा'पदका अर्थ विद्धन्यूना और 'शुद्धा'पदका अर्थ शुद्धन्यूना करते हैं. इन उपर्युक्त भेदोंसे अब शुद्धाधिका अष्टमी हो तो दो दिन सूर्योदयमें होनेसे पूर्व दिन ही उपवास करना चाहिये, क्योंकि सप्तमीवेधकी बाधा नहीं है. विद्धाधिकामें दूसरे दिन उपवास करना चाहिये, क्योंकि पहले दिन सप्तमीवेध बाधक है. जैसा कि इन ब्रह्मवैवर्तके वचनोंसे मालूम होता है "वर्जनीया प्रयत्नेन" इत्यादि- "यदि सप्तमीविद्धा अष्टमी रोहिणीनक्षत्रसे युक्त भी हो, तथापि त्याग करना चाहिये, क्योंकि भगवानका जन्म रोहिणीनक्षत्रसे युक्त शुद्धाष्टमीमें हुआ है, विद्धामें नहीं". तात्पर्य यह है कि त्यागका कारण वेध है. अतः जिन उपर्युक्त भेदोमें वेध हो उनका त्याग कर शेष ग्रहण करे.

शंका-(सप्तमीवेधको बाधक न मानकर जो विद्धा शुद्धा अभिन्न (एक) मानते हैं उनके मतका अनुवाद इस प्रकार है) पद्मपुराणका "कार्या विद्धाऽपि" वचन "रोहिणी सहित अष्टमी यदि सप्तमीविद्धा भी हो तो उसमें उपवास करना चाहिये. अष्टमी और रोहिणी की समाप्ति होने पर पारणा करनी चाहिये".

उत्तर-इसका निराकरण यह है कि यह वचन जयन्तीव्रतसे सम्बन्ध रखता है, जन्माष्टमीव्रतसे नहीं, क्योंकि गरुडपुराणके जयन्तीबोधक इस अग्रिम वचनसे इसका आशय मिलता जुलता है. "जयक्त्यां पूर्वविद्धायाम्" वचन है कि "पूर्वविद्धा जयन्तीमें उपवास करना चाहिये. तिथि या उत्सवकी समाप्ति होने पर व्रतवाला पारणा करे". और निषेध भी है "सत्रृक्षापि न कर्तव्या" इस ब्रह्मवैवर्तके वचनसे यह प्रमाणित हो चुका है. जन्माष्टमी व्रतमें रोहिणीनक्षत्रका कोई प्रयोजन नहीं है, व्रतस्वरूपसम्पादक नहीं है, किन्तु जयन्तीव्रतमें है. सभी जयन्तीबोधक वचनोमें रोहिणीका सम्बन्ध सुना जाता है. अतएव पद्मपुराणका उपर्युक्त वचन जयन्तीबोधक ही होना चाहिये, क्योंकि इसमें भी रोहिणीके योगका प्रतिपादन है. श्रावणकृष्णमें अथवा भाद्रपद कृष्णमें अष्टमी और रोहिणीका योग बनना ही जयन्तीका स्वरूप है. इसके लिये कुछ प्रमाणवचन और दिखाये जाते हैं "श्रावणे नभस्ये वा" वसिष्ठ संहिता वचन

"श्रावण या भाद्रपद कृष्णपक्षमें रोहिणीसहित अष्टमी यदि मनुष्योंको मिले तो वह जयन्ती कही गई है".

'रोहिणी च यदा' विष्णुधर्मोत्तरवचन "हे द्विजोत्तम? कृष्णपक्षकी अष्टमीके दिन रोहिणी हो तो वह तिथि सब पापोंकी हरणकरनेवाली जयन्ती कही गई है".

शंका-सप्तमीवेधके विषयमें यह व्यवस्था भी सम्भव नहीं कि जब दोनों दिन अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहती हो तब पहले दिन व्रतका निषेध करनेमें सप्तमीवेधनिषेधक वचनोंकी

सार्थकता है.

उत्तर-"पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने" यह पद्मपुराणका पूर्वोक्त वचन अष्टमी पहले दिन अर्धरात्रिके समय वर्तमान हो और दूसरे दिन सूर्योदयके बाद मुहूर्तमात्र भी हो तो दूसरे दिन व्रत करनेके लिये सम्पूर्ण कहता है. कृष्णाष्टमी मुहूर्तमात्र भी नवमीमें हो तो व्रतकेलिये योग्य है. सप्तमीविद्धा कदापि न लेनी. इसीसे "नक्तादिव्रतयोगेषु रात्रियोगो विशिष्यते" इस वचनके आधारपर निशीथव्यापिनी अष्टमी ग्रहण करनेवाले मतका भी निराकरण हो गया, क्योंकि खास जन्माष्टमीसे सम्बन्ध रखनेवाले उपर्युक्त विशेष वचनोंसे सर्वसाधारण रात्रिव्रतोमें प्रवृत्त होनेवाले इस सामान्य वचनका बाध हो जाता है, इसलिये यह जन्माष्टमीके विषयमें प्रवृत्त नहीं हो सकता, जन्माष्टमीसे भिन्न अन्य रात्रिव्रतमें प्रवृत्त होगा.

द्वैतनिर्णयकारका मत-दोनों दिन अर्धरात्रिसे भिन्न पूर्व-पश्चात् समयमें रोहिणी होनेपर द्वैतनिर्णयकारने ये तीन पक्ष बताये. 1.दोनों दिन अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहना, 2.पिछले दिनों ही अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहना और 3.केवल पहले दिन ही अर्धरात्रिके समय अष्टमी रहना.

इन तीनों पक्षोंको बताकर उपवासयोग्य दिनका निर्णय यह किया कि पहले और दूसरे पक्षमें दूसरे दिन ही उपवास करना चाहिये, जो कि स्कन्दपुराणके इस वचनसे निश्चित होता है. "सप्तमीसंयुताष्टम्याम्" इत्यादि

"हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! सप्तमीसे युक्त अष्टमीमें रोहिणी वर्तमान हो और दूसरे दिन आधे मुहूर्त तक भी रहे तो दूसरे दिन आठ प्रहरका व्रत समझना चाहिये, ऐसा वेदव्यास आदि महर्षियोंने पहले कहा है". "मुहूर्तमपि संयुक्ता संपूर्णा साष्टमी भवेत्" यह पद्मपुराणका साकल्य वचन भी ऐसे ही स्थलमें चरितार्थ है.

'यत्तु पाद्मम्' इत्यादि ग्रन्थसे दूसरेके मतका उल्लेख करते हुए "पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने" "कलाकाला-मुहूर्ताऽपि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः" इस पद्मपुराणके दोनों वचनोंका उपन्यास कर कहा कि ऐसे वचनोंका उपयोग भी पूर्वोक्त दोनों पक्षोमें करना चाहिये. यह सम्भव है कि सप्तमीविद्धा अष्टमी बढकर दूसरे दिन सूर्योदयके बाद मुहूर्त कलाकाष्ठासमय पर्यन्त रहे. यदि उस दिन रोहिणी भी हो तो इतने अल्प समय तक रहनेवाली अष्टमीको भी पूर्ण मानना चाहिये ऐसा आतिदेशिक जयन्तीयोग बताना "पूर्वविद्धाष्टमी" आदि वचनोंका तात्पर्य है. ऐसा अपना आशय द्वैतनिर्णयकारने समझाया.

द्वैतनिर्णयकारमतकी समीक्षा-परन्तु विचार करने पर यह मत ठीक नहीं मालूम होता. "पूर्वविद्धाष्टमी या तु" पाद्मवचन जन्माष्टमीव्रतका निर्णय बताता है, न कि जयन्तीव्रतका. यहां यह कहना भी अशक्य है कि जैसी इस वचनकी सङ्गति जन्माष्टमीके पक्षमें लगती है वैसी ही जयन्तीके पक्षमें भी लग सकती है. क्योंकि इसमें रोहिणीनक्षत्रका नाम ही नहीं है तब इसको जयन्तीविषयक कैसे कह सकते हैं. (द्वैतनिर्णयकारने दोनों दिन निशीथव्यापिनी अष्टमी हो या दूसरे दिन ही हो ऐसी परिस्थितिमें उपवास-दिनका निर्णय करनेकेलिये इस वचनको लिखा है, परन्तु यह वचन कहता है कि नवमीके दिन सूर्योदयके समय मुहूर्तमात्र भी अष्टमी हो तो उसे पूर्ण मानना चाहिये. तात्पर्य यह है कि यहां तो केवल सूर्योदयके समय अष्टमी और सम्पूर्ण दिन नवमी रहनेका उल्लेख है. अष्टमीकी निशीथव्याप्तिकी तो गन्ध ही नहीं है. यह द्वैतनिर्णयकारके उपन्यस्त विषयका नहीं कर सकता) अतएव एतन्मत अग्राह्य है.

भगवद्भास्कर मत-भगवद्भास्करमें कहा है कि उपवास पूजाका अंग है यह स्वतन्त्ररूपसे व्रतके समयनिर्णयमें कारण नहीं है. "सोपवासो हरेः पूजां तत्र कृत्वा न सीदति" इस विष्णुधर्मोत्तरके वचनमें और "तस्मात् मां पूजयेत् तत्र शुचिः सम्यगुपोषितः" इस भविष्योत्तरके वचनमें भी उपवास गौण मालूम होता है. जैसा कि "सदतो धावति" यह दन्तधावन फल प्राप्त करनेवालेका संस्कारस्वरूप गौणकर्म है. वस्तुतः पूजा ही प्रधान है. इस अंगभूत उपवासकी फलश्रुति जहां कही वचनोमें उपलब्ध हो वह प्रशंसार्थवाद है; वास्तविक नहीं है. जैसी कि "यस्य पर्णमयी जुहूः भवति न स पापं श्लोकं शृणोति" इस श्रुतिमें है. दर्शपौर्णमासयागमें सुचिके समान आकृतिवाला एक काष्ठमय होमका साधन पात्र है, जिसका नाम 'जुहू' है. यह जिस यजमानके पर्णकाष्ठसे बना हुआ होता है वह यजमान कभी अपना अपयश नहीं सुनता है. इस प्रकार श्रुति फल बताती है. परन्तु यह होमका अंगभूत गौणपदार्थ है, इसका कोई स्वतन्त्र फल नहीं हो सकता. अतएव यह फलश्रुति प्रशंसामें परिणत हो जाती है. इसे पूर्वमीमांसामें प्रशंसार्थवाद कहते हैं. इसका बोधक पूर्वमीमांसाका सूत्र इस प्रकार है "अंगे फलश्रुतिः अर्थवादः". इस व्रतके प्रकरणोंमें वर्तमान सभी फलश्रुतियोंका सम्बन्ध इसके साथ है. "श्रवणे बहुले" इस निम्नलिखित भविष्यत्पुराणके वचनमें भी 'जन्माष्टमीव्रत'शब्दका अर्थ पूजा है. अतएव व्रत न करनेपर पढा गया निन्दार्थवाद और इसके आधारपर की जानेवाली व्रतनित्यत्वकी घोषणा, दोनों युक्तियुक्त साबित होते हैं. भविष्यत्पुराणवचन, "श्रावणे बहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमी व्रतम्, न करोति नरो यस्तु भवति क्रूरराक्षसः". जो मनुष्य अमान्त श्रावण कृष्णमें कृष्णाष्टमीका व्रत नहीं करता है वह क्रूर राक्षसका जन्म ग्रहण करता है.

भगवद्भास्कर मतकी समीक्षा-भगवद्भास्करका यह कथन भी वस्तुतः ठीक नहीं है. सम्भव है कि "श्रावणे बहुले" उस भविष्यद्वचनमें 'श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत' शब्दका अर्थ पूजा हो, परन्तु "तां सुपुण्यामुपवसेत्" "उपोष्या सा प्रयत्नतः" इत्यादि वचनोंमें कृष्णजन्माष्टमीके उपवासका ही प्रधानरूपसे विधान किया है. इसके अतिरिक्त कालमाधवप्रदर्शित इन स्कन्दपुराणीय वचनोंमें स्पष्ट ही उपवास न करने पर निन्दार्थवाद सुना गया है "जयन्तीवासरे प्राप्ते" वचन "जयन्तीके दिन जो मूर्ख भोजन करता है उसका शरीर यमदूतोंके द्वारा पीडित किया जाता है" इस निन्दार्थवादसे प्रस्तुत व्रतमें उपवासकी नित्यता साबित होती है. अतएव इसके साथ एकवाक्यता सिद्ध करनेकेलिये दोनों वचनोंमें मूलभूत कर्म एक ही मानना चाहिये.

"श्रावणे बहुले" इस वचनमें भी 'जन्माष्टमीव्रत' शब्दका उपवास अर्थ ही ग्रहण करने योग्य है, पूजा अर्थ नहीं. यह भी योग्य नहीं कि उपर्युक्त स्कान्दवचनमें जयन्तीव्रतका नाम है इसलिये केवल जयन्तीव्रतमें ही उपवासप्रधान माना जाय, जन्माष्टमी व्रतमें न माना जाय. क्योंकि जन्माष्टमी और जयन्ती को भिन्न-भिन्न हम मानते हैं. पूजाको प्रधान मानते हुए भगवद्भास्कर आदि तो दोनोंका अभेद सूचित करते हैं. यदि ऐसा न हो तो भगवद्भास्करके दिखाये हुए जन्माष्टमी सम्बन्धी तीन वचनोंमें पूजाका उपवासके अि‘रूपसे उल्लेख है, जिससे पूजा प्रधान स्वीकारकी जाती है. अब रहे ये पूर्वोक्त दो वचन "सोपवासो हरेः पूजाम्" "शुचिः सम्यगुपोषितः". इन दोनोंमें तो वचनान्तरोंसे प्राप्त उपवासका अनुवाद मात्र है, उपवासको पूजाका अंग नहीं कहा. एक ही वचनमें दोनोंके उल्लेख मात्रसे अंगिा‘भाव प्रमाणित नहीं होता है. जैसाकि आदित्यपुराण दीपावलिप्रकरणके "कृत्वा तु पार्वणश्राद्धम्" इस एक ही वचनमें पठित पार्वणश्राद्ध और लक्ष्मीपूजन का अंगिा‘भाव नहीं है. यदि उपवास अंग होता तो "केवलेन उपवासेन" यह वचन केवल उपवासका पापमुक्ति फल बताकर उसमें निःसन्देहताके लिये "नात्र संशयः" इतना जोर कैसे देता? क्योंकि अंगका फल तो अर्थवाद मात्र है ऐसा भगवद्भास्करने पहले सिद्ध किया है. 'केवलेन' वचन "मेरे (श्रीकृष्णके) जन्म दिवसमें केवल उपवास करनेसे सौ जन्मोंके पापोंका नाश होता है इसमें कोई सन्देह नहीं". इससे सिद्ध हुआ कि उपवास अंग नहीं है, प्रत्युत पूजा अंग है. उपवास अंगी है, प्रधान है. व्रतकालका निर्णय इसी उपवासको लक्ष्यमें रखकर ही करना चाहिये. द्वैतनिर्णयमें भी इस उपवासका उल्लेख कर जन्माष्टमी और जयन्ती के भेदसे उपवास दो प्रकारका है यह निर्णय किया. कालमाधव, कालतत्त्वविवेक आदि ग्रन्थोंने भी उपवासको ही प्रधान कहा है.

ऐसे दोनों प्रकारके वचनोंकी उपपत्ति दिखाकर जन्माष्टमीको रात्रिप्रधान माननेवालोंको उत्तर देते हुए एकवचनकी व्यवस्था 'एतेनैव'से 'विरोधात्' पर्यन्त और दिखाई है. आशय यह है कि भगवानका जन्म अविद्धा अष्टमीमें हुआ था यह निश्चित है, इसलिये 'नक्तादिव्रतयोगेषु' इसका उपयोग जन्माष्टमी व्रतसे भिन्न व्रतोमें होता है यह मानना चाहिये. ऐसा न मानने पर पूर्वोक्त वेधनिषेधक वचनोंका विरोध आता है.

भृगुवचनकी संगति-अब भृगुवचनसे यह भ्रम न हो कि जयन्तीके समान जन्माष्टमी भी सप्तमी विद्धा ही व्रतमें ग्रहण करने योग्य है, एतदर्थ उक्त वचनका तात्पर्य समझाया जाता है.

भ्रमका स्वरूप- "जन्माष्टमीजयन्ती च" भृगुवचन "जन्माष्टमीके दिन आनेवाली जयन्ती और शिवरात्रि पूर्वविद्धा ही करनी चाहिये. तिथि और नक्षत्र के अन्यमें पारणा करनी चाहिये". आशय यह है कि "श्रावणे वा नभस्ये वा रोहिणीसहिताष्टमी" इस वसिष्ठसंहिताके वचनके अनुसार जयन्तीव्रत श्रावण और भाद्रपद इन दोनों मासोंमें सम्भवित है. श्रीकृष्ण जन्माष्टमीव्रत केवल भाद्रपदमें ही आता है. जिस वर्ष जयन्तीयोग श्रावणमें न मिलकर केवल भाद्रपदमें ही मीले उस वर्ष जन्माष्टमी और जयन्ती दोनों सम्मिलित हो जाती है. ऐसे अवसर पर यदि पहले दिन सप्तमीविद्धा अष्टमीमें रोहिणी हो और दूसरे दिन अर्धरात्रिके समय रोहिणी और अष्टमी दोनों न हो, अर्थात् अर्धरात्रिसे पूर्व रहे तो "सप्तमीसंयुताष्टम्यां भूत्वा ऋक्षं द्विजोत्तमः" इस स्कन्दपुराणके वचनके अनुसार रोहिणी नक्षत्रकी साकल्यव्याप्ति और "पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने" इस पद्मपुराणके वचनके अनुसार अष्टमी तिथिकी साकल्यव्याप्तिका उल्लेख कर आतिदेशिक जयन्तीयोगको मान्य करके जन्माष्टमीव्रतके समान जयन्तीव्रत भी दूसरे दिन करना चाहिये यह भ्रम हो सकता है.

ऐसे भ्रमकी निवृत्तिकेलिये यह भृगुवचन पढा गया है. भ्रम-इसमें 'जन्माष्टमीजयन्ती च' इतना एक समसित पद है. 'जन्माष्टम्यां जयन्ती' इस प्रकार सप्तमीतत्पुरुष समास है. आगेका 'च' अपि का समानार्थक है. तात्पर्य यह निकला कि जैसे श्रावणकी जयन्ती पूर्वविद्धाकी जाती है इस प्रकार भाद्रपदमें श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके दिन जो जयन्ती हो वह भी पूर्वविद्धा करनी चाहिये, जन्माष्टमीके समान आतिदेशिक जयन्तीयोगवाले दूसरे दिनमें करना उचित नहीं. किसी-किसी निर्णयग्रन्थमें "जन्माष्टमीजयन्ती च"के स्थानमें "जन्माष्टमीरोहिणी च" ऐसा पाठ है. यहां भी "जन्माष्टम्यां रोहिणी" इस प्रकार

सप्तमीतत्पुरुष मानना चाहिये. यहां 'रोहिणी' शब्दका अर्थ रोहिणी नक्षत्रका सम्बन्धवाली जयन्ती है. तात्पर्यपूर्ववत् है.

श्रावणाष्टमी भाद्रपदाष्टमी भ्रमनिवारण-जयन्तीका व्रत श्रावण या भाद्रपद किसीमें भी हो सकता है, परन्तु जन्माष्टमीका व्रत केवल भाद्रपदमें ही हो सकता है, यह उपर्युक्त ग्रन्थमें निर्णय किया. इससे एक लाभ यह हुआ कि "श्रावणे बहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्" यह वचन श्रावणकृष्णमें जन्माष्टमी व्रत करनेके लिये कहता है. यह श्रावण कृष्णादि मास है या शुक्लादि? इस प्रश्नका उत्तर हमें "तिथिकृत्ये च कृष्णादिः व्रते शुक्लादिरेव च" इस वचनसे मिलता है. वह यह है कि तिथिकृत्योमें कृष्णादि और व्रतोमें शुक्लादि मास लेना चाहिये. जन्माष्टमी सम्बन्धी पूजा-उपवास आदि तिथिकृत्य हैं. अतः जयन्तीव्रतके समान जन्माष्टमीव्रत भी कृष्णादि श्रावणमें करना चाहिये, ऐसा उपर्युक्त वचनके आधार पर किसिको भ्रम हो सकता है. इस भ्रमका निवारण उपर्युक्त ग्रन्थसे हो गया. उक्त वचनमें जन्माष्टमीके साथ जो 'व्रत' शब्दका प्रयोग किया है, इसमें शुक्लादि श्रावण लेना चाहिये यह निश्चय होता है. अन्य वचनोंमें भी जन्माष्टमीव्रत श्रावणमें करना चाहिये ऐसा उल्लेख नहीं है. अतएव उपर्युक्त वचनमें शुक्लादि श्रावण मानना योग्य है. जयन्ती तो दोनों मासोंमें हो सकती है, इसलिये जयन्तीबोधक वचनोंमें दोनों भी मास कृष्णादि मानना योग्य है.

"सप्तमीसंयुताष्टम्याम्" यह स्कन्दपुराणका वचन और "पूर्वविद्धाष्टमी या तु" यह पद्मपुराणका वचन दोनों जन्माष्टमी प्रकरणके हैं. इसलिये ये दोनों जयन्तीके बोधक नहीं. जयन्तीमें रोहिणीका योग मुख्य बतलाया है, वह जन्माष्टमीमें किस प्रकारका हो तो ग्रहण करने योग्य है यह उपर्युक्त स्कान्दवचन बताता है. एतदर्थं ही इसमें रोहिणीका नामनिर्देश किया है, न कि जयन्तीयोग बतानेकेलिये. 'पूर्वविद्धाष्टमी' इस पाद्मवचनमें तो 'रोहिणी'का नाम ही नहीं है. यह तो केवल वेधके निषेधकेलिये है. "यदि पहले दिन सप्तमीका वेध हो तो नवमीके सूर्योदयके समय मुहूर्तमात्र अष्टमी रहती हो तो उसे पूर्ण मानना चाहिये और व्रत करना चाहिये". यदि पहले दिन वेध न हो तो नवमीके दिन सूर्योदयके बाद भी अष्टमी रहे तो वह रोहिणीयुक्त होने पर भी ग्राह्य नहीं, पूर्व दिनकी ही अविद्धा ग्राह्य है.

"विहीनशल्यापि विवर्जनीया यद्यग्रतो वृद्धिमुपैति पक्षः,

यथा मलिम्लुचः पूर्वोदैवो मासस्तथोत्तरः,

त्याज्या तिथिस्तथा पूर्वा वृद्धौ ग्राह्या तथोत्तरा"

इन दोनों वचनोंके अनुसार वेधरहित तिथिकी यदि वृद्धि हो तो दूसरे दिन व्रत करना चाहिये, यह मालूम होता है. परन्तु ये वचन सर्वसाधारण तिथियोंकेलिये है, सामान्य वचन है इनका 'पूर्वविद्धाष्टमी यातु' आदि जन्माष्टमीमात्र विषयक विशेष वचनोंसे बाध हो जाता है. 'पूर्वविद्धाष्टमी' वचनसे ही यह प्रमाणित होता है कि पहली अष्टमीके त्याग करनेमें वेध कारण है, यदि वेध न हो तो पहली अष्टमीका त्याग आवश्यक नहीं. अतएव शुद्धाधिका अष्टमी हो तब पहले दिन ही व्रत करना चाहिये. वेध ही त्यागका कारण है. यह इन स्कन्द और पद्मपुराण के वचनोंसे सिद्ध होता है

"प्राचीन समयमें देवोंने अपने-अपने पदोंसे गिर जानेकी शंकासे जन्माष्टमीके व्रतको समाप्तीवेधके प्रपञ्चसे भ्रष्टकर छिपा दिया. अतएव सप्तमीवेधयुक्त जन्माष्टमीका त्याग करे". (स्कान्दवचन)

"जैसे शुद्ध भी पञ्चगव्य मद्यसे युक्त हो तो ग्राह्य नहीं होता है, वैसे ही रोहिणीयुक्ता अष्टमी सप्तमीविद्धा हो तो त्याज्य है".(पाद्मवचन)

सारांश यह कि सप्तमीका सूर्योदय वेध जिस अष्टमीमें न हो वह अष्टमी अर्धरात्रिके समय रहे या ना रहे, उसमें रोहिणी हो या न हो, अवश्य श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रतमें ग्रहण करने योग्य है. यदि ऐसी वेधरहित अष्टमीमें अर्धरात्रिके समय रोहिणीनक्षत्र हो और चन्द्रवार बुधवार-इन दोनोंमें से कोई एक वार भी उस दिन मिले तो अधिक फल होता है. यह इन स्कन्दपुराण और पद्मपुराणके वचनोंसे प्रमाणित होता है.

"सूर्योदयके समय कुछ अष्टमी हो, बादमें संपूर्ण नवमी हो, बुधवार और रोहिणीनक्षत्र भी हो तो ऐसा योग सौ वर्षोमें भी मीलता है अथवा नहीं". (स्कान्दवचन)

"जिन्होनें अमान्त श्रावणकृष्ण अष्टमी रोहिणी नक्षत्र बुधवार अथवा सोमवार ऐसे योगमें व्रत किया, उन्होनें प्रेतयोनिमें गये हुए अपने सम्बन्धियोंको प्रेतत्वसे मुक्त कर दिया. यदि इसके साथ फिर नवमीका सम्बन्ध हो जाय तो क्या कहना है, कोटि कुलोंको मोक्ष दे देती है".(पद्मपुराण)

अष्टमी क्षय हो तो क्या करना? अपरार्क, कृष्णपण्डित आदि विद्वानोंका यह मत है कि "पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने" यह पाद्मवचन दूसरे दिन मुहूर्त मात्र भी यदि अष्टमी हो तो पहले दिन सप्तमीविद्धाका त्याग करना चाहिये, यदि दूसरे दिन कुछ भी अष्टमी न हो अर्थात् सप्तमीविद्धा अष्टमीका क्षय हो गया हो तो विद्धाष्टमीमें ही व्रत करना चाहिये ऐसा कहता है. व्यासवचनसे विष्णुभक्तिचन्द्रोदयकारका मत है कि "ऐसे विद्धाक्षयके अवसर पर शुद्ध नवमीमें ही उपवास करना चाहिये, जैसा कि दशमीविद्धा

एकादशीका क्षय होने पर शुद्धद्वादशीमें एकादशीव्रत किया जाता है". निम्नलिखित व्यासवचन यही प्रमाणित करता है "जन्माष्टमीं पूर्व विद्धाम्" इत्यादि "सप्तमीविद्धा अष्टमी रोहिणीसे युक्त और पूर्ण भी हो तो उसका त्याग कर शुद्धनवमीमें उपवास-व्रत करें".

सिद्धान्त यह है कि यदि चन्द्रोदयकारका दिखाया हुआ व्यासवचन प्रामाणिक है तो जैसा चन्द्रोदयकारने कहा वैसा ठीक है. यदि प्रामाणिक नहीं है तो इनके दिखाये हुए एकादशीव्रतके उदाहरणानुसार शुद्धनवमीमें व्रत करना चाहिये अथवा अन्य परपक्षीय विद्वानोंने विद्धाक्षय स्थलमें और कोई मार्ग न होनेसे जो अन्यतिथि ग्रहण करनेकी रीति (दशमीवेधमें द्वादशी ग्रहण करनेकी रीति) स्वीकार की है वही 'पूर्वविद्धाष्टमी' वाक्य पर हमें भी स्वीकार करनी चाहिये. वह रीति इस प्रकार है.

अपरार्कके द्वारा उद्धृत "पूर्वविद्धा यथा नन्दा" इस वचनमें विद्धा अष्टमीके त्यागमें विद्धा एकादशीके त्यागका अतिदेश किया है, अर्थात् विद्धा अष्टमीका त्याग विद्धा एकादशीके समान करे यह कहा है, और विद्धा एकादशीके त्यागका प्रकार

"दिनक्षये तु शुद्धैव द्वादशी मोक्षकि'भिः,

उपोष्या दशमीयुक्ता नो पोष्यैकादशी तिथिः"

इस सुमन्तुवचनके अनुसार यह है कि

"मोक्ष चाहनेवाले पुरुष दशमीविद्धा एकादशीका क्षय होने पर इसका व्रत भी गौणकाल नवमीमें करे" यह सिद्ध होता है.

पद्म और सुमन्तु के वचन क्रमश: ये हैं :

"जैसे श्रवण नक्षत्रसे युक्त भी भाद्रपदशुक्ला एकादशी दशमीविद्धा हो तो त्याग किया जाता है, इसी प्रकार रोहिणीसहित अष्टमी भी यदि पूर्वविद्धा हो तो त्याग करना चाहिये"

"मोक्ष चाहनेवाले पुरुषोंको विद्धा एकादशीका क्षय हो तो शुद्धद्वादशीमें उपवास करना चाहिये. दशमीयुक्त एकादशीमें उपवास करना योग्य नहीं"

हरिवल्लभसुधोदयमें उद्धृत "दिनक्षये तु सम्प्राप्ते उपोष्या द्वादशी भवेत्" इस कूर्मपुराणके वचनका भी यही आशय है.

यद्यपि कूर्मपुराणके "अर्धरात्रम् अतिक्रम्य दशमी दृश्यते यदि" इस वचनमें एकादशीव्रतके अर्धरात्रिवेधका उल्लेख है, परन्तु जन्माष्टमीव्रतमें इस अर्धरात्रिवेधका अतिदेश नहीं हो सकता. क्योंकि एकादशी भिन्न तिथियोमें सूर्योदयके समयसे वेध मानना धर्मशास्त्र सम्मत है यह इस वचनसे मालूम होता है : "उदयात् उदयात् प्रोक्ता हरिवासरवर्जिता:" (एकादशीभिन्न तिथियां सूर्योदयसे विद्धा कही गई है) अतएव अतिदेश वचनसे प्राप्त हुआ भी अर्धरात्रवेध यहां अविरुद्ध होनेसे अग्राह्य है.

विद्धाष्टमी क्षय हो तो नवमीमें व्रत करनेका वचन और तर्क : परमतकी शंका है कि सभी वचन विद्धाष्टमीका त्याग करनेकेलिये कहते हैं, परन्तु विद्धा एकादशीका क्षय होने पर जैसे द्वादशीमें व्रत करनेकेलिये सुमन्तुवचन कहता है, इस प्रकार विद्धाष्टमीका क्षय होने पर शुद्धनवमीमें व्रत करनेकेलिये कोई भी वचन नहीं करता है, अतएव विद्धाष्टमीका त्याग किया जाये. शुद्धनवमीमें व्रत तो नहीं हो सकता. इसका निराकरण यह है कि पहले दिखाये हुए अनेक विद्धानिषेधोंसे विद्धाष्टमीका त्याग सिद्ध है. इसी त्यागकेलिये ही यदि "पूर्वविद्धा यथा नन्दा" यह पाद्मवचन विद्धा एकादशीके त्यागका इसमें अतिदेश करता है, तो यह अर्धरात्रिका वेधदर्शक कूर्मपुराणका वचन चालु प्रकरणमें उपयोगि नहीं है. अतएव इस पूर्वविद्धा अतिदेशके द्वारा शुद्ध नवमीमें व्रत करनेकेलिये संकेत किया गया है. यदि नवमीमें उपवास करनेकेलिये साक्षात् विधिवचन होना चाहिये, यही आग्रह है तो विधिवचन भी सयुक्तिक दिखाया जाता है. सुनिये, हरिवल्लभसुधोदयमें उद्धृत स्कन्दपुराणका "विना ऋक्षेण" वचन. इस वचनमें 'नवमी' 'संयुताष्टमी' इस प्रकार पदच्छेद है. अभिश्रवणार्थक 'यु' धातुसे बने हुए 'संयुत' शब्दका अर्थ अमिश्रित है. संयुताष्टमी यह बहुव्रीहि समास है. तात्पर्य यह है कि जिसमें अष्टमी मिश्रित न हो ऐसी शुद्ध नवमीमें रोहिणी न हो तब भी व्रत करना चाहिये. इसका समर्थक कारण उत्तरार्धमें यह दिखाया है कि सप्तमीविद्धा अष्टमीमें यदि रोहिणी भी हो तो भी व्रत नहीं करना चाहिये. अर्थात् सप्तमीविद्धाका क्षय होने पर नवमीमें व्रत करना चाहिये. यह शङ्का भी नहीं कर सकते कि उपर्युक्त वचनका नवमीयुक्त अष्टमी ऐसा प्राञ्जल अर्थ क्यों न लिया जाय? ऐसा अर्थ लेनेमें कोई (विनिगमना) सबल कारण नहीं है. क्योंकि तर्कोंसे इस वचनका वो ही अर्थ निश्चित होता है जो हमने दिखाया है. तर्क इस प्रकार है :

अष्टमीक्षयमें नवमीमें व्रतकरनेका तर्क :

"यदि यह नवमी जन्माष्टमीके गौण समयके रूपमें उपवास करने योग्य न होती तो वेध जन्माष्टमीका उदूषक (दूषित न करनेवाला) न होता. जो तिथि जिस तिथिमें दूषक

वेधको निरूपण करनेमें अयोग्य रहती हुई अदूषक वेधको भी निरूपण करनेमें योग्य न रहे तो वह उस तिथिमें ग्राह्य वेधको निरूपण करनेमें योग्य नहीं होती है".

और भी इस व्याप्तिमूलक तर्कसे नवमी व्रतके योग्य सिद्ध होती है. जैसा कि :

यह नवमी, अपने अनुगुण जन्माष्टमी तिथिके गौणकालके रूपसें उपवास करने योग्य है,

जन्माष्टमीतिथिमें अदूषक वेधको उत्पन्न करने योग्य होनेसे.

जो तिथि जिस तिथिमें अदूषक वेधको उत्पन्न करने योग्य होती है, वह तिथि उस तिथिके गौणकालके रूपसे उपवास करने योग्य होती है,

जैसे द्वादशी,

जो तिथि जिस तिथिके गौणकालके रूपसे उपवास करने योग्य नहीं होती है. जैसे दशमी.

उपर्युक्त अनुमानमें जो स्वानुगण शब्द दिया है उसका अर्थ यह है कि उसके वेधसे युक्त होते हुए भी उसके द्वारा घटित होनेवाले दोषोंसे रहित हो, अथवा उसके द्वारा घटित होनेवाले गुणोसे युक्त हो. दोष या गुण मेंसे किसी एकको उपस्थित करनेवाले सम्बन्धविशेषका (तिथिसम्बन्धविशेषका) नाम 'वेध' है. सन्दिग्ध विषयोंको साफ करनेवाले तर्क हैं. और भी प्रशस्तवेधघटक तर्क भी कीया जाता है. जैसा कि

यदि यह नवमी जन्माष्टमीके गौणकालके रूपसे उपवास करने योग्य न हो तो जन्माष्टमी सम्बन्धी विशेषवचनोंमें नवमीविद्धा अष्टमीकी प्रशंसा न होती.

यदि इस प्रकार प्रसंशाका प्रयोजन केवल योग विशेषसे उत्पन्न होनेवाले फलकी सूचना देना ही होता तो इसका निरूपण बुधवार या सोमवार के योगके समान उपलक्षणरूपमें होता. और भी उत्सवाधिकरणसे तर्क होता है कि नवमी उपर्युक्तानुसार जो उपवास करने योग्य न होती तो भगवानकी जन्मतिथि अष्टमी नवमीसहित न होती.

इसी प्रकारके और तर्कोंका भी अनुसन्धान कर लेना चाहिये. नवमीका वेध अष्टमीको दूषित नहीं करता है, प्रत्युत इसके गुणोंमें वृद्धि करता है. भगवानके प्रादुर्भावका उत्सव भी नवमीमें ही हुआ, इन तर्कोंको लक्ष्यमें रखनेसे यह निश्चित होता है कि "बिना ऋक्षेण कर्तव्या नवमीसंयुताष्टमी" इस उपर्युक्त वचन क्षयादि वशात् शुद्ध अष्टमी न मिले तो केवल नवमीमें व्रतका विधान करता है. "यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतर:" इस प्रकार तर्कोसे निर्णय करना ही उचित है. भगवानके प्रादुर्भावका उत्सवादिक शुद्ध नवमीमें हुआ था, यह आचार्यचरणोंके सुबोधिनीस्थित वचनोंसे मालूम करना चाहिये. किसीका मत है कि

यदि विद्धाष्टमीका क्षय हो तो और कोई मार्ग न होनेसे विद्धाष्टमीमें ही व्रत करना चाहिये. परन्तु ऐसा माननेमें कोई कारण नहीं. शास्त्रोमें विद्धाष्टमीके निन्दार्थवाद हैं, अर्थात् इसका त्याग करना सिद्ध है. ग्रन्थोंमें इस विषयके वचनोंको व्यवस्था परस्पर विरुद्ध देखी जाती है, ऐसी दशामें यह कथन असावधानीसें कहा गया है.

प्रस्तुत विषयका विचार करते हैं : 'रीति' शब्दका अर्थ सदाचार है. "नो चेत् पूर्वोक्तरीतिरेव अनुसर्त्तव्या" इस श्रीप्रभुचरणोक्त मूलके 'पूर्वोक्त' शब्दके 'पूर्वमुक्ता' 'पूर्वैरुक्ता' इस प्रकार दों भिन्न-भिन्न समासोंके आधार पर समान तात्पर्यवाली दो व्याख्याएं पहले दिखाई. अब 'रीति' शब्दका अर्थान्तर ग्रहण कर तीसरी व्याख्या दिखाई जाती है. इस पक्षमें भी 'पूर्वैरुक्ता' तृतीया तत्पुरुष समास ही है. यहां 'रीति' शब्दका अर्थ सम्प्रदाय है. प्राचीन शिष्ट वैष्णवोंने कहे हुए सम्प्रदायका अनुसरण करना चाहिये. अत्र ऐसा करने पर अन्धपरम्परा साबित होगी यह भी नहीं कह सकते. क्योंकि सदाचारको भी धर्ममें प्रमाण माना है "श्रुति: स्मृति: सदाचार:" इस मनुवचनमें यह उल्लेख है. यदि यह कहा जाये कि "श्रुति: स्मृति: सदाचार: स्वस्य च प्रियमात्मन:" इन चार धर्मबोधक प्रमाणोंमें पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर निर्बल है. अतएव प्रबल स्मृतिके सामने निर्बल सदाचार आदरणीय नहीं हो सकता, तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि कलिवर्ज्य प्रकरणमें पढा हुआ "साधूनां समयश्चापि प्रमाणं वेदवद्भवेत्" यह वचन सदाचारको वेदतुल्य बताता हुआ कलियुगमें स्मृतिकी अपेक्षा इसे प्रबल प्रमाणित करता है. "साधूनां समयश्चापि" यह वचन कलिवर्ज्य प्रकरणमें पढा है. कलिवर्ज्य प्रकरणकी समाप्तिके "यत्र सायम्" इत्यादि वचन "तत्त्वविचारमें तत्पर और जिस संन्यासीओंकी सायंकालिक भिक्षा है ऐसे महात्मा विद्वान् मुनियोंने विश्वकी रक्षाकेलिये अथवा तत्तत्कर्मोका व्यवहार रोकनेकेलिये धर्मशास्त्रके वचनोंकी सुयोग्य व्यवस्था कर कलिके प्रारम्भमें ही इनको बन्द कर दिया" यह वचन कलिवर्ज्य प्रकरणको उपक्रम करके पढा है. इसलिये प्रकरणको लक्ष्यमें रखते हुए कोई यह कहे कि कलिवर्ज्य विषयोंमें ही स्मृतिकी अपेक्षा सदाचार बलवान् है. इसका निराकरण यह है कि सभी समयोंमें आचरणकेलिये स्मृतिवचनोंके द्वारा विहित कुछ धर्मोका केवल कलि समयमें इन कलिवर्ज्य प्रकरणके स्मृति वचनोंके द्वारा निषेध किया गया है. इन विधायक निषेधक वचनोंकी उत्सर्गापवाद रूपसे व्यवस्था करने पर कलिवर्ज्यवचन विधायकोंका निषेध कर सावकाश और सार्थक हो जाते हैं. ऐसी दशामें "यत्र सायम्" इस डेढ श्लोकसे कलिवर्ज्य विधियोंको सदाचारका रूप देकर उस सदाचारको वेदवत् कहकर और बल पहुचाना आवश्यक नहीं है, जब ऐसा माना जाय कि कलिमें स्मृतिकी अपेक्षा सभी सदाचार बलवान् हैं और इनके एक साधारण उदाहरण कलिवर्ज्य है, तभी इस ग्रन्थकी सङ्गति हो सकती है.

शिष्टाचारका कलिवर्ज्य प्रकरण अतिरिक्त अन्यत्र भी आदर होता है. इसी कारण कालमाधवने गौरीतृतीया निर्णयके प्रकरणमें इस प्रकार शिष्टाचारकी शरण ली है. द्वितीयाविद्धा तृतीयामें व्रत करनेका निषेध है इसलिये चतुर्थीविद्धा तृतीया लेनी चाहिये. चतुर्थीके दिन तृतीया तीन मुहूर्त यानी छः घडी तक रहे तो श्रेष्ठ है. चार घडी कच्ची तक रहे तो मध्यम है. जब इससे भी कम हो तो शास्त्रके द्वारा कुछ निर्णय नहीं मिलता है. क्योंकि विद्धाका निषेध होनेसे पहले दिन व्रत कर नहीं सकते और दूसरे दिन व्रत करनेका कोई विधान नहीं. परन्तु गौरीतृतीया यदि दो घडी कच्ची भी दूसरे दिन हो तो दूसरे दिन ही शिष्ट लोग व्रत करते हैं. अतएव ऐसी दशामें केवल शिष्टाचारसे ही परविद्धा लेनेका निश्चय होता है.

शिष्टशब्दार्थ प्रश्न : जन्माष्टमीके विषयमें शिष्टोंके कई भिन्न-भिन्न मत हैं, किसी एक शिष्ट मतके अनुसार निर्णय कैसे होगा?

उत्तर-क्योंकि इस विषयमें भगवानके अवतारके समय जो शिष्ट थे वे ही 'शिष्ट' शब्दसे ग्रहण करने योग्य हैं और उन्होंने तो शुद्ध नवमीमें ही भगवानका जन्मोत्सव आदि किया. उनको भगवत्प्रादुर्भावका ज्ञान नवमीमें ही हुआ. किसी समय विद्धाष्टमीका क्षय होने पर उन्होंने विद्धाष्टमीमें जन्मोत्सव आदि किये होते तो वैसा कहीं इतिहास भी उपलब्ध होता. नहीं उपलब्ध हुआ. इससे निश्चय होता है कि विद्धाष्टमीमें उत्सव आदि नहीं हुए, नवमीमें ही हुए.

अब एक शंका यह है कि यदि शुद्ध अष्टमी न मिले तो शुद्ध नवमीमें व्रत करना चाहिये ऐसा निश्चित सिद्धान्त है तो श्रीप्रभुचरणोंको ऐसा स्पष्ट ही कहना था, "नोचेत् पूर्वोक्तरीतिरेव अनुसर्तव्या" इस प्रकार छिपे ढंगसे क्यों कहा?

इसका तो उत्तर यह है कि जन्माष्टमी व्रतमें निमित्त भगवानका जन्म जैसे विद्धाष्टमीमें नहीं हुआ वैसे ही शुद्धनवमीमें भी नहीं हुआ है ऐसा शास्त्रसे सिद्ध है. अगतिकगति रूप लोकन्यायसे तो विद्धाका क्षय होने पर विद्धामें ही व्रत करना प्राप्त होता है, परन्तु "वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी" यह पाद्मवचन त्यागके कारण वेधका निर्देश करते हुए विद्धाका त्याग करनेकेलिये कहता है. ऐसी दशामें व्रतलुप्त होनेकी आपत्ति आई. इसके परिहारकेलिये भगवानके जन्मोत्सवके आधारभूत कालमें भगवज्जन्मनिमित्तिक व्रत करना चाहिये. शास्त्र उत्सवके अन्तमें पारणा करनेकेलिये कहते

हैं. व्रत उत्सवका अङ्ग है. यह उत्सव श्रीनन्दराय आदिने नवमीमें किया था यह भी स्पष्ट है. इन ही श्रीनन्दराय आदि शिष्टोंका 'पूर्वोक्तरीतिः' इस पङ्क्तिमें प्रभुचरणोंने 'पूर्व' शब्दसे बोध कराया है. भक्तिमार्ग गोप्यमार्ग है. यहां इस प्रकार अस्पष्ट ढंगसे ही कहना उचित था. श्रीआचार्यचरणोंने भागवतके "यदा बहिर्गन्तुमियेष" इस श्लोककी व्याख्यामें कहा है कि "मध्यरात्रिमें दो घडियोंका जो 'निशीथ' नामक मुहूर्त होता है, जिसमें कि भगवानका प्रादुर्भाव हुआ था, उसके एक मुहूर्त बाद ही मायाका जन्म हुआ, ऐसा मालूम होता है. वह योगमायाका जन्म नवमीमें हुआ, रोहिणी नक्षत्र भगवत्प्रादुर्भावके समय और योगमायाके जन्मके समय दोंनों समयोंमें समान था. रोहिणीके साथ यदि कृत्तिकाका वेध हो तो कोई दोष नहीं. सप्तमीका वेध अवश्य दूषित है. इस प्रकार विद्धाके त्यागका कारण दिखाया. पुत्रोत्सव आदि शुद्ध नवमीमें ही हुए थे, इसलिये शुद्ध अष्टमी न मिले तो केवल नवमीमें ही उपवास करना चाहिये, इस प्रकार केवल नवमीमें उपवास करनेका हेतु भी कहा.

यहां एक प्रश्न शेष रहा कि व्रत की पूर्णतामें पारणा आवश्यक अङ्ग है. इसका विचार क्यों नहीं किया?

इसका उत्तर यह है कि तिथि या उत्सवके अन्तमें पारणा करनेका उल्लेख है. इसमें तिथ्यन्त पारणा तो विद्धा त्यागके कथनसे ही सिद्ध हो गई. जब कि अविद्धामें व्रत हो तो दूसरे दिन अष्टमी मिल नहीं सकती और कदाचित् मिली भी तो अल्प समय, जिससे पारणामें बाधा नहीं आसकती है. रोहिणी नक्षत्र अधिक समय रहे भी तो यह व्रत समयका स्वरूपघटक नहीं है. इसलिये इससे पारणामें रुकावट नहीं हो सकती है. इस प्रकार पारणाका समय पूर्वोक्त अन्यान्य विचारोंसे स्वयं ही मालूम हो जाता है. इसलिये पृथक् विचार नहीं कीया गया है. श्रीप्रभुचरणोंने जन्माष्टमी निर्णयका इस प्रकार उपसंहार किया.

श्रीगोकुलाधीशके चरणकमलोंके अनुग्रहसे हमने ।

इस प्रकार जन्माष्टमी व्रतका निर्णय किया ॥

अथवा इस श्लोककी इस प्रकार योजना भी हो सकती है की "श्रीगोकुलाधीशके प्रादुर्भाव दिनका व्रत(जन्माष्टमीव्रत) इस प्रकार है". "सर्वं वाक्यं सावधारणम्" है. इस नियमके अनुसार "ऐसा ही है, अन्यथा नहीं है. हमने यह निर्णय कर लिया है". ऐसा निर्णय सुबन्त-तिङन्तरूप जो धर्मशास्त्रीय वचनोंके पद हैं, जिनका दूसरा पर्याय शब्द है और जो भक्तोंको कमलके समान आनन्द देते हैं. इनके आशयोंको स्पष्ट कर दिया है.

श्रीआचार्यचरणोंने तत्त्वदीपनिबन्धमें सुबन्त-तिङन्तात्मक शब्दोंको "पदद्वयं सुप-्तिङन्तम्, ताभ्यां चलति वाक्पति:" इस वचनसे नामात्मक भगवानके चरणरूप कहा है. अतएव ऐसे चरणोंकी प्रसाद तात्पर्यस्पष्टीकरणरूप ही होना योग्य है.

जैसे मनके प्रसादका स्वरूप हर्ष, दिशाओंके प्रसादका स्वरूप दूरसे स्पष्ट दीखना, जलके प्रसादका स्वरूप स्वच्छत्व, आकाशके प्रसादका स्वरूप बादलोंसे आच्छन्न न होना, इसी प्रकार तात्पर्यका स्पष्टीकरण ही पूर्वोक्त पदोंके प्रसादका स्वरूप है.

इस प्रकार हजारों उत्तम तर्कोंसे एवं इन सहायक धर्मशास्त्रीय वचनोंसे बाध होने पर भी तुम वादियोंकी बुद्धि इस विषयमें लज्जित क्यों नहीं होती है॥1॥

सप्तमीविद्धा अष्टमीका क्षय होने पर विचार चतुर उत्तम पुरुष शास्त्रीय वचनोंके आधारसे इस प्रकार नवमीमें उपवास करें॥2॥

श्रीविट्ठलेश प्रभुचरणोंके चरण कमलोमें भ्रमर बननेसे जो कृपाबल मिला, उसके सहारेसे मुझने (पुरुषोत्तमने) जन्माष्टमी निर्णयका आशय स्पष्ट किया॥3॥

यहां मेंनें जीवबुद्धिसे सत् या असत् जो कुछ कहा है, इस बाल्यचापल्यकेलिये श्रीप्रभुचरण एवं आपके भक्त क्षमा प्रदान करें.

श्रीविट्ठलेश प्रभुके चरणोंमें एकाग्रचित्त श्रीपीताम्बरके पुत्र पुरुषोत्तमका बनाया जन्माष्टमी निर्णय प्रकाश पूर्ण हुआ.

इसके अनन्तर स्वतन्त्र रूपसे निर्णय किये जाते हैं.

श्रीराधिकाजीका जन्मोत्सव

भाद्रपद शुद्ध अष्टमीके दिन स्वामिनी श्रीराधिकाजीका जन्मोत्सव है, जिसका उल्लेख पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें "वृषभानुरितिख्यात:" इत्यादि वचनोंमें है. वचनका आशय इस प्रकार है : " 'वृषभानु' नामसे प्रसिद्ध एक गोप था, जो बडा कुटुम्बी था. इसकी पत्नी सौभाग्य सुन्दरी बडी भाग्यवती थी. ये दोनों ब्रह्मा और सावित्री के अंशसे पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए. इनके घर भाद्रपद शुक्ल अष्टमी भौमवार मूल नक्षत्रमें श्रीकृष्णको आनन्द देनेवाली विशाललोचना महालक्ष्मी दिव्य रीतिसे प्रकट हुई".

यह राधाष्टमीका उत्सव विद्धा अष्टमीका क्षय हो शुद्धा अष्टमी न मिले तो विद्धा अष्टमीमें ही करना चाहिये. यह अगतिकगतिरूप लोकन्यायसे निश्चित होता है. जब विद्धाका क्षय न हो तो सूर्योदयव्यापिनी अष्टमीमें उत्सव करना चाहिये. निर्णयसिन्धुमें उद्धृत कृत्यतत्त्वार्णवके "युगाद्यावर्षवद्धिश्च" इस वचनसे यह प्रमाणित होता है जिसका अर्थ इस प्रकार है :

"कार्तिक शुक्ल नवमी, वैशाख शुक्ल तृतीया, माघ कृष्ण अमावस्या, भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी ——मये युगादि तिथि, जन्मोत्सव और गौरीव्रतोपयोगिनी सप्तमी ये सूर्योदयकी अपेक्षा रखती है. इनमें अन्य तिथियोंके ग्राह्य वेधोंकी आवश्यकता नहीं है".

यदि दोनों दिन सूर्योदयके समय अष्टमी हो तो पहली लेनी चाहिये यह ज्योतिर्निबन्धके "षष्ठीदंडात्मिकाया:" इस वचनसे मालूम होता है. वचनका आशय ऐसा है :

"पहले दिन तिथि पूर्ण अहोरात्र साठ घडियों तक रह कर दूसरे दिन कुछ रहा भाग तिथिमल है, धर्म-कर्मके योग्य नहीं है. यह नियम एकादशीमें नहीं है".

यह राधाष्टमीका उत्सव भक्तिमार्गीय सम्प्रदायके अनुसार करना आवश्यक है. इसका मर्यादामार्गके अनुसार विशेष विवेचन करना उचित नहीं है इसलिये विराम किया जाता है.

भाद्रपद शुक्ल एकादशी - द्वादशी

भाद्रपद शुक्ल एकादशी या द्वादशीको परिवर्तनी होता है परन्तु इसके करनेकी परम्परा नहीं है इसलिये इसके विषयमें विशेष विचार अनावश्यक है. यदि कोई श्रद्धा वश करे तो आगे दिखाये जाने वाले प्रबोधिनी एकादशीके निर्णयके अनुसार तिथि ग्रहण करे.

श्रीवामनद्वादशी

भाद्रपद शुक्ल द्वादशी श्रवण नक्षत्र युक्तमें भगवान् वामनजीके प्रादुर्भावका उत्सव है. इसका उल्लेख निर्णयसिन्धुमें उद्धृत श्रीमद्भागवत अष्टम स्कन्धके "श्रोणायाम्" इत्यादि वचनोंमें है. जैसाकि श्रवण नक्षत्रसे युक्त द्वादशीमें अभिजित् मुहूर्तमें जब सभी नक्षत्र तारा ग्रह अनुकूल थे तब भगवान् वामनका जन्म हुआ. द्वादशीके मध्याह्नमें भगवानका जन्म हुआ है. इस तिथिका नाम 'विजया' है.

हैमाद्रि और दिनकरोद्योत में उद्धृत भविष्यपुराणके "एकादशी" इत्यादि वचनोंसे भगवान् वामनका प्रादुर्भाव एकादशीमें हुआ यह प्रमाणित होता है. जैसा कि "जब एकादशी श्रवण नत्रक्षसे युक्त हो तो उसे 'विजया' कहा है. यह भक्तोंको विजय देने-वाली है" यहांसे प्रारम्भ कर आगे कहा कि "बहुत समय व्यतीत होने पर अदिति गर्भिणी हुई. उसने नवम मासमें भगवान् वामनको जन्म दिया" इस प्रकार सभी प्रस्तुतोपयोगी वर्णन कर उपसंहारमें कहा कि "हे युधिष्ठिर! यह सब एकादशीके दिन हुआ. अत एव भगवानको यह विजया तिथि सब प्रकारसे प्रिय है". इस प्रकार भगवान् वामनजीका प्रादुर्भाव भिन्न-भिन्न कल्पोंमें इन दो भिन्न-भिन्न तिथियोंमें हुआ, परन्तु दोनों ही दिन मध्याह्नमें ही हुआ. "अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ" यह पुराणसमुच्चयका वचन कहता है कि वामन, दाशरथि राम और परशुराम तीनोंका प्रादुर्भाव मध्याह्नमें ही हुआ. भागवतके उपर्युक्त वचनमें "श्रोणायां श्रवणद्वादश्याम्" इस प्रकार श्रवण नक्षत्रका दो बार उल्लेख करनेसे वामन जयन्तीमें श्रवणकी आवश्यक्ता साबित होती है.

विष्णुशृंखलयोग : तिथियां तो एकादशी और द्वादशी दोनों अनुकूल हैं. विष्णुधर्मोत्तर और मत्स्य पुराण के वचनोंमें कहा है कि "श्रवण नक्षत्र एकादशी द्वादशी दोनोंसे सम्बन्ध करता हो तो विष्णुशृंखल योग होता है".

"एकादशी द्वादशी च" एकादशी और द्वादशी इन दोनोंमें श्रवण भी हो तो विष्णुशृंखल योग होता है, जो विष्णुसायुज्य मुक्तिको देता है".(विष्णुधर्मोत्तर)

"श्रवण एकादशी और द्वादशी दोनोंको स्पर्श करे तो वह विष्णुशृंखल योग है, जिसका देव विष्णु है. उसमें यथाविधि उपवास करनेसे मनुष्यके सब पाप नष्ट हो जाते हैं, एवं जिससे संसारमें वारंवार आना दुर्लभ हो जाता है ऐसी सर्वोत्तम सिद्धिको मनुष्य प्राप्त करता है. जैसे शृंखलाकी बेडियां परस्पर जुडी हुई रहती है, इसी प्रकार श्रवण एकादशीमें प्रविष्ट हो कर द्वादशीमें समाप्त होता है और दोनों तिथियोंको परस्पर जोड देता है, इसलिये

दूसरे योगको विष्णुशृंखल कहते हैं. यह योग बहुत बडे पुण्यका कारण है. जब यह बन जावे तो इसी में उत्सव और उत्सवाङ्ग-उपवास दोनों करने चाहिये".(मत्स्यपुराण)

हेमाद्रि नामक धर्मशास्त्र ग्रन्थमें "द्वादशी श्रवणस्पृष्टा स्पृशेदेकादशीं यदि" इस वचनके अनुसार "श्रवण नक्षत्रवाली द्वादशीके स्पर्श मात्रसे विष्णुशृंखल योग कहा है". परन्तु वह शीघ्रतावश विना विचारे कहा मालूम होता है. क्योंकि जिस समय एकादशी है उस समय श्रवण नहीं है. श्रवणका स्पर्श आगे द्वादशीमें होने वाला है. अत: ऐसे श्रवणसे पूर्वोक्त शृंखला स्वरूप नहीं बना. कल्याणरायजीने उक्त हेमाद्रि मतका अनुवाद किया है. उनकी गलती नहीं है. "द्वादशी श्रवणं स्पृष्टा" इस वचनका तो यह आशय है कि द्वादशी और श्रवण दोनों एक ही समयमें एकादशीका स्पर्श करें.

शुद्धा* या शुद्धाधिका द्वादशीमें श्रवण नक्षत्रका सम्बन्ध हो तो नक्षत्रसे सम्बन्ध करती हुई द्वादशीमें ही उत्सव करना चाहिये. श्रीभागवतके पूर्वोक्त वाक्योंसे भगवान् श्रीवामनजीका जन्म श्रवण युक्ता द्वादशीमें निश्चित है. "तिथि नक्षत्रयोर्योग:" यह भविष्य पुराणका वचन कहता है कि "अहोरात्रमें दो कला पर्यन्त भी द्वादशी और श्रवण का योग हो तो उसे पूरा आठ प्रहरका समझे". यही आशय "उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रवणद्वादशी व्रते" इस नारदीय वचनका भी है. इस श्रवण द्वादशीका व्रत करनेसे पहले दिन किये हुए एकादशीके व्रतकी कोई हानि नहीं है, क्योंकि दोनोंकी अधिष्ठाता देवता एक विष्णु ही है, जिसका उल्लेख "एकादशीमुपोष्यैव" इस भविष्य पुराणके वचनमें है. वचनका आशय यह है : "एकादशीका उपवास करके ही द्वादशीका उपवास करना चाहिये. इसमें किसी भी शास्त्रविधिका लोप नहीं है, क्योंकि दोनोंकी देवता विष्णु ही है".(*केवला शब्दका अर्थ विशिष्ट धर्म रहिता ही मानना उचित है, वह विशिष्ट धर्म विद्ध-अधिकात्व हटा दिया तो शेष शुद्धा ही रही, जो के केवला शब्दका अर्थ है.)

श्रवणयोगविचार : यदि एकादशीमें ही श्रवण नत्रक्षका सम्बन्ध हो द्वादशीमें श्रवण या विष्णुशृंखल कुछ भी न हो तो एकादशीमें ही उत्सव आदि करना उचित है. क्योंकि पूर्वोक्त श्रीभागवतवचनसे व्रतके दिन श्रवणका होना आवश्यक बताया गया है. और भविष्य पुराणके अनुसार भगवानका प्रादुर्भाव भी किसी कल्पमें एकादशीमें हुआ है. एवं ऐसी परिस्थितिमें एकादशीके दिन वामनजयन्ती माननेकेलिये नारदपुराणमें "यदा न प्राप्यते" यह विधायक वचन भी प्रत्यक्ष उपलब्ध होता है. वचनका आशय यह है :

"जब कि द्वादशीके दिन विष्णु देवताका श्रवण नत्रक्ष न मिले तो वामन जयन्तीका व्रत पाप नाश करनेवाली श्रवण नक्षत्रसे युक्त एकादशीमें करें. दोनों व्रतोंकी देवता पुराण

पुरुषोत्तम विष्णु है. भेद दृष्टि नहीं करना चाहिये. भेद दृष्टिसे पतित हो जाता है".

कल्याणरायजीने भी इसी प्रकार एकादशीमें व्रत स्वीकार किया है. श्रवणयोगका अभाव हो तो यदि केवल दशमीविद्धा एकादशीमें ही श्रवण ही शुद्ध एकादशी या द्वादशी में न हो तो द्वादशीमें ही जन्मोत्सव करें. श्रीभागवतके पूर्वोक्त वचनमें द्वादशीके दिन ही भगवानका प्रादुर्भाव कहा है. वराह पुराणके "एकादश्यां नरो भुक्त्वा" इस वचनसे प्रमाणित होता है कि केवल द्वादशीमें व्रत करनेसे एकादशी और द्वादशी इन दोनों व्रतोंका पुण्य प्राप्त हो जाता है. वचनका आशय मनुष्य एकादशीके दिन भोजन कर यदि द्वादशीके दिन उपवास करे तो दोनों व्रतोंसे उत्पन्न पुण्यको प्राप्त करता है, कोई संशय नहीं.

दिनकरोद्योत आदि ग्रन्थोमें वह्निपुराणके वचनके आधार पर यह लिखा है कि "दशमी विद्धा एकादशीमें श्रवण नक्षत्र हो तो वामन जयन्तीका उपवास उसी दिन करना चाहिये" परन्तु यह वचन सकाम व्रतका विधान करता है. इसमें 'सर्वकामदा' पद स्पष्ट है. अतएव सभीकेलिये यह निर्णय ग्राह्य नहीं हो सकता. वह्निपुराणका 'दशम्येकादशी' वचन जो एकादशी दशमीसे विद्धा हो, वह उपवास करने योग्य नहीं है परन्तु यदि वह श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो सब कामनाओंको देनेवाली है.

जब कि पहले दिन *विष्णुशृंखल योग न हो किन्तु एकादशीके बाद प्रवृत्त होनेवाली द्वादशीमें श्रवण प्रविष्ट होकर दूसरे दिन तक रहता हो और दूसरे दिन मध्याह्नके किसी एकदेशमें दोनों दिन द्वादशी समान या न्यूनाधिक भी रहती हो तथापि वामन जयन्तीका व्रत पूर्व दिन ही करना चाहिये. क्योंकि युग्म वचन द्वादशीका व्रत एकादशीसे युक्त द्वादशीमें करना उचित बतलाता है.

(*पहले दिन मध्याह्नव्यापिनी एकादशीमें श्रवण हो तो उस दिन वामन जयन्ती माननी चाहिये यह "यदा चैकादश्यामेव श्रवणयोग:" पंक्तिसे पहले कह चुके हैं. "दिनद्वयेऽपि न श्रवणयोग:" ऐसा आगे कहेंगे. विष्णुशृंखल न हो तो ऐसी दशामें पहले दिन एकादशीके बाद द्वादशीमें श्रवण लग कर दूसरे दिनके द्वादशीमें रहे, यह विचारसे प्रथम दिन व्रत हो सकता है.)

युग्मवचन :

"युग्माग्नियुगभूतानां षण्मन्योर्वसुरन्ध्रयो:,

रुद्रेण द्वादशीयुक्ता चतुर्दश्यां च पूर्णिमा,

प्रतिपदोप्यमावस्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम्".

द्वितीयासे तृतीया, चतुर्थीसे पञ्चमी, षष्ठीसे सप्तमी, अष्टमीसे नवमी, एकादशीसे द्वादशी, चतुर्दशीसे पूर्णिमा, अमावस्यासे प्रतिपदा मिली हुई हो तो यह दो-दो तिथियोंका सम्बन्ध महाफल देनेवाला होता है.

द्वादशी मध्यह्नव्यापिनी लेनी यदि दोनों दिन श्रवण न हो, परन्तु मध्याह्न व्यापिनी द्वादशी दूसरे दिन ही हो तो दूसरे दिन द्वादशीमें ही उत्सव करना चाहिये. उपवासकेलिये तो यह निर्णय है कि समर्थ हो तो दोनों दिन उपवास करें, पहले दिन एकादशीका और दूसरे दिन वामनजयन्तीका, और असमर्थ हो तो केवल वामन जयन्तीका ही उपवास करें.

यद्यपि "द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु" इस मत्स्य पुराणके वचनमें और "श्रवणेन सिते" इस यमस्मृतिके वचनमें शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन श्रवण हो तो एकादशीका उपवास कर द्वादशीमें केवल भगवानकी पूजा करें यह उल्लेख है, उपवासका नहीं है. तथापि उक्त दोनों वचनोंमें भाद्रपदमासका नाम नहीं है. इससे मालूम होता है कि वामनजयन्तीसे और कोई द्वादशीकेलिये यह विधान है. आचार्यचरणोंने तत्त्वदीपनिबन्धमें कहा है कि

"वामनजयन्तीके उत्सवके निमित्त एकादशीमें उपवास न भी करें, तथापि द्वादशीमें अवश्य करें. विशेष कहनेसे क्या? उत्सवप्रधान है. भोजन 'कर' उत्सव करना निषिद्ध है. भगवानका आवेश नहीं हो सकता".

अतएव द्वादशीमें उपवास करना निश्चित है. कुछ भक्त केवल एकादशीका उपवास कर द्वादशीके दिन उत्सवकी समाप्तिमें पारणा करते हैं उनके आशयका विवेचन नृसिंहजयन्तीके निर्णयमें किया जायगा.

पूर्वोक्त निर्णयके अनुसार ग्राह्य वामनजयन्तीके भेद यहां दिखाये जाते हैं:

1.विष्णुश्रृंखलयोगवती शुद्धा न्यूना एकादशी : श्रवण एकादशीमें प्रवृत्त होकर द्वादशीमें समाप्त हो तो विष्णुश्रृंखल योग होता है. योग जिस दिन बने उस दिन वामनजयन्तीका व्रत होता है.

2.श्रवण युक्ता शुद्धा न्यूना एकादशी : विष्णुश्रृंखल योग न बने, एकादशीके साथ ही श्रवणका सम्बन्ध हो, तथापि वामनजयन्तीका व्रत एकादशीमें होता है.

3.श्रवण युक्त शुद्धाधिका एकादशी : एकादशी पहले दिन अरुणोदय वेधसे रहित रहती हुई दूसरे दिन भी सूर्योदयके बाद रहे तो जिस दिन श्रवण हो उस दिन वामनजयन्तीका व्रत

होता है. दोनों दिन श्रवण हो तो दूसरे दिन होता है.

4.श्रवण युक्त विद्धाधिका द्वादशी : यदि पहले दिन एकादशीके बादमें द्वादशी और श्रवण रहते हो और दूसरे दिन भी द्वादशी और श्रवण हो तो जिस दिन द्वादशीकी मध्याह्नमें व्याप्ति हो उस दिन वामनजयन्तीका व्रत होता है. दोनों दिन मध्याह्न या मध्याह्नके किसी एकदेशमें समान व्याप्ति हो तो पहले दिन होता है.

5.श्रवणयुक्त शुद्धाधिका द्वादशी : पहले दिन सूर्योदयसे द्वादशी पूर्ण रहकर दूसरे दिन भी सूर्योदयके बाद रहे तो जिस दिन श्रवण हो उस दिन वामनजयन्तीका व्रत होता है. दोनों दिन श्रवण हो तो पहले दिन व्रत होता है. यदि पहले दिन सर्वथा श्रवण न हो, दूसरे दिन सूर्योदयके समयकी अल्प द्वादशीमें ही श्रवण हो तो दूसरे दिन व्रत होता है.

6.श्रवणरहिता एकादशी : यदि एकादशी द्वादशी दोनों दिन श्रवण न हो और द्वादशीकी मध्याह्नव्याप्ति भी किसी दिन न हो तो अरूणोदय वेध रहिता मध्याह्नव्यापिनी एकादशी जिस दिन हो उस दिन वामनजयन्ती होती है.

7.श्रवणरहिता द्वादशी : यह द्वादशी विद्धा शुद्धा आदि प्रकारोंमें से किसी भी प्रकारकी हो जो मध्याह्नके समय रहे वह वामनजयन्तीमें ग्राह्य है.

पारणा :

अब पारणाका विचार किया जाता है. श्रवणद्वादशी और वामनजयन्ती इन दोनोंका परस्पर कोई विरोध नहीं है, एवं कभी-कभी एक ही अहोरात्रमें दोनोंके व्रतका अनुष्ठान तन्त्रसे किया जाता है, इसलिये इनकी पारणा यथासम्भव दोनों समाप्त होने पर वा दोनोंमें से किसी एकके समाप्त होने पर करनी होगी. वहां विषयविचार इस प्रकार है :

शुद्धन्यूना द्वादशी : अर्थात् जो द्वादशी सूर्योदयसे प्रवृत्त होकर दूसरे दिनके सूर्योदयसे पूर्व कहीं भी मध्यमें समाप्त हो जाय ऐसी द्वादशी

और

विद्धान्यूना द्वादशी : अर्थात् प्रातःकाल कुछ समय एकादशी हो और बादमें द्वादशी प्रारम्भ होकर दूसरे दिनके सूर्योदयसे पूर्व ही समाप्त होती हो,

——एसी द्वादशी यदि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो, एवं दूसरे दिन श्रवण कुछ समय ही रहता हो तो वामनजयन्ती और श्रवणद्वादशी इन दोनों व्रतोंको पूर्ण कर त्रयोदशीके दिन पारणा करना उचित है. यह उभयान्त पारणा है.

त्रयोदशीमें पारणा करनेका कहीं भी निषेध नहीं है, प्रत्युत एसे उत्तम समयमें व्रत कर त्रयोदशीमें पारणा करनेका बहुत बडा पुण्य है. इसका उल्लेख विष्णुरहस्य और तत्त्वसागर के वचनोंमें है. विष्णुरहस्यका "एकादशी कलाम्" वचन : "कलामात्र भी एकादशीसे युक्त यदि द्वादशी हो तो उसमें उपवास व्रत करनेकी सौ यज्ञ करनेके समान पुण्य है. पारणा त्रयोदशीमें करना चाहिये". तत्त्वसागरका "द्वादश्यैकादशी" वचन : "जहां एकादशी द्वादशीसे मिल गई हो, उसमें उपवास कर त्रयोदशीमें पारणा करें".

जब शुद्धाधिका द्वादशी हो, अर्थात् पहले दिन सूर्योदयसे प्रवृत्त होकर दूसरे दिन सूर्योदयके बाद तक रहती हो अथवा विद्धाधिका द्वादशी हो, अर्थात् पहले दिन सूर्योदयके बाद कुछ समय एकादशी हो अनन्तर द्वादशी प्रवृत्त होकर दूसरे दिन सूर्योदयके बाद तक रहती हो, श्रवण भी पहले दिन अल्प हो और बढ कर दूसरे दिन अधिक रहता हो, तब एकादशी और वामन जयन्ती दोनोंका व्रत पहले ही दिन तन्त्रसे एक साथ होगा. शुद्धाधिका पक्षमें "पूर्णा भवेत् यदा नन्दा" इस गरुडपुराणके वचनसे यह निर्णय मिलता है कि एकादशीका त्याग कर द्वादशीमें करना चाहिये, क्योंकि बढी हुई तिथि श्रेष्ठ मानी गई है. विद्धाधिका पक्षमें "निष्कामस्तु गृही" इस स्कन्द पुराणके वचनसे यह निश्चय होता है कि जो निष्काम गृहस्थ है उसे दूसरी एकादशीमें व्रत करना चाहिये. उस एकादशीके दूसरे दिन प्रातःकाल द्वादशी हो या न हो ऐसी विद्धाधिका-शुद्धाधिका द्वादशीमें एकादशी वामनजयन्ती और श्रवणद्वादशी इन तीन व्रतोंका अनुष्ठान एक साथ होता है. इन तीनोंकी पारणा दूसरे दिन अल्पशेष द्वादशीमें ही करना उचित है. श्रवण नक्षत्रकी समाप्तिकी अपेक्षा नहीं करनी चाहिये. निर्णयामृतमें उद्धृत "विशेषेण महीपाल" इस मार्कण्डेय पुराणके वचनमें कहा है कि "जब श्रवण बढकर दो दिन रहे तो तिथिकी द्वादशीकी समाप्तिमें पारणा करना आवश्यक नहीं, द्वादशीमें ही पारणा करनी चाहिये. द्वादशीका उल्लंघन न करें". मत्स्य और कूर्मपुराणके "एकादशीमुवोष्यैव" इस वचनमें उल्लेख है कि एकादशीका उपवास कर द्वादशीमें पारणा करना चाहिये. त्रयोदशीमें पारणा न करें. क्योंकि बारह द्वादशीयोंका क्षय-पुण्यका क्षय हो जाता है. पारणाके योग्य द्वादशीमें यदि श्रवण नक्षत्रका मध्य भाग भी आता हो, तथापि वह उपेक्षा करने योग्य है. क्योंकि द्वादशीका त्याग करने पर तो बारह द्वादशीयोंके पुण्योका क्षय होता है. और नक्षत्रके मध्य भागका त्याग करने पर तो केवल श्रवणके ही पुण्यका नाश है. "आ, भा, का, सितपक्षेषु' यह वचन यदि किसी प्रामाणिक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थका भी हो जिसका आशय यह है कि आषाढ भाद्रपद और कार्तिक शुक्लकी द्वादशीके दिन क्रमशः अनुराधा श्रवण और रेवती हो तो भोजन न करें, बारह द्वादशीयोंके पुण्यका क्षय होता है; तथापि दोनों पक्षोमें दोष समान है.

यदि द्वादशी शुद्धोना हो, अर्थात् पहले दिन सूर्योदयसे प्रारंभ होकर दूसरे दिन सूर्योदयके बाद तक न रहती हो, अथवा विद्धोना द्वादशी हो, अर्थात् पहले दिन सूर्योदयके बाद शुरू होकर दूसरे दिन सूर्योदयसे पहले ही समाप्त हो जाती हो, क्षय तिथि हो, श्रवण भी पहले दिन कम हो, दूसरे दिन अधिक हो तो ऐसी परिस्थितिमें दूसरे दिन पारणामें श्रवणके मध्य भागका त्याग करना चाहिये. “मैत्राद्यपादे” इस विष्णुधर्मके वाक्यमें यह उल्लेख है कि भगवान् विष्णु अनुराधाके पहले चरणमें शयन करते हैं, रेवतीके अन्तिम चरणोंमें जागते हैं और श्रवणके मध्य भागमें करवट बदलते हैं. इन तीनों नक्षत्र समयोंका पारणामें त्याग करना आवश्यक है. “आ. भा. का. सितपक्षेषु” यह वचन प्रामाणिक हि नहीं है, एसा कोई कहते हैं. यदि प्रामाणिक भी हो भी तो इसके आशयका विष्णुधर्मके वाक्यमें समावेश हो गया है. इसलिये व्रत निर्णयकी व्यवस्था पूर्वोक्त ही होगी. निर्णयका संक्षिप्त यह कि पारणाके लिये द्वादशी मिल सके तो श्रवण समाप्तिकी प्रतीक्षा आवश्यक नहीं. न मिल सके तो श्रवणका मध्य भाग छोडकर पारणा करें.

भाद्रपदके उत्सव समाप्त

आश्विनमास

आश्विनमें नवरात्रका आरम्भ सूर्योदय व्यापिनी प्रतिपदासे होता है. इस पर्वका विशेष विचार वहांसे (ग्रन्थान्तरोक्त प्रतिपन्निर्णयसे) मालूम करना चाहिये. विशेष प्रयोजन न होनेसे यहां विचार नहीं किया जाता है.

विजयादशमी

आश्विन शुक्ल दशमीके दिन विजयोत्सव होता है. इसके निर्णयकेलिये प्रतापमार्तण्ड, निर्णयामृत, भगवद्भास्कर, दिनकरोद्योत, हेमाद्रि और निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोमें स्थित वचनोंका संग्रह किया जाता है.

पुराणसमुच्चय ‘दशम्यां’ वचन “मनुष्य अश्विन शुक्ल दशमीको अपराह्णके समय अपने गांवके बाहर ईशान कोणमें प्रयत्नसे अपराजिता देवीका पूजन करें. मनुष्य अपने कल्याण और विजय केलिये नवमीयुक्ता दशमीमें पूर्वोक्तविधिसे अपराजिताका पूजन करें. आश्विन शुक्ल दशमीमें अपराजिताका पूजन करें, एकादशीमें अपराजिताका पूजन करना उचित नहीं”

ग्रन्थान्तरका वचन “मूल नक्षत्रमें देवीका आवाहन, पूर्वाषाढामें पूजन और उत्तराषाढामें बलिदान करें. श्रवणमें अपराजिताका पूजन करें”.

स्कन्दपुराण वचन “जो राजा दशमीका उल्लंघन कर प्रस्थान करता है (एकादशीमें प्रस्थान करता है) उसके राज्यमें सम्पूर्ण वर्ष कहां भी विजय होना सम्भव नहीं”.

भृगुवचन “अश्विन शुक्ल दशमीको सायंकाल अथवा विजय मुहूर्तमें सब राशिवाले मनुष्योंकेलिये यात्रा शुभ है. (संपूर्ण दिनमें पन्द्रह मुहूर्त्त होते हैं, इस दृष्टि कोणसे) ग्यारहवें मुहूर्त्तका नाम विजय है, उस मुहूर्तमें सभी विजय चाहनेवालोंको यात्रा करनी चाहिये”.

विश्वरूप वचन “आश्विन शुक्ल दशमीके दिन विजय मुहूर्तमें सीमोल्लंघन करें. विजय चाहनेवाले आश्विन शुक्ल दशमी-नवमी-सहित ग्रहण करें. एकादशी सहित ग्रहण न करें”.

रत्नकोशमें नारदवचन “सक्ध्या कुछ वीती हो, कुछ-कुछ तारे निकल आये हों, यह विजय समय है जो सब कर्तव्योमें सिद्धि देनेवाला है”.

नारदवचन “आश्विन मास शुक्ल पक्षमें सूर्योदयके समय यदि दशमी तिथि हो तो उसे विद्वान् विजया नामसे जानते हैं. राजाओंके पट्टाभिषेक कार्यमें आश्विन शुक्ल दशमी नवमीविद्धा लेना उचित नहीं. उस दिन श्रवण भी क्यों न हो”.

धर्मविवृति ग्रन्थका वचन : “आश्विन शुक्ल दशमी यदि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो विजया दशमी कही गई है. यह श्रवणसे युक्त विजया दशमी ही अत्यन्त दुर्लभ है”.

कश्यपवचन “सूर्योदयके समय कुछ दशमी हो, एवं बादमें एकादशी और श्रवण हो तो वह विजया दशमी है. भगवान् रामचन्द्रने दशमी और श्रवण में प्रस्थान किया था. अतएव मनुष्य उस दिनके नक्षत्रमें सीमोल्लंघन करें”.

गोपथब्राह्मण भविष्यपुराण और पुराणसमुच्चय में वास्तुपूजन नीलखंजनदर्शन आदि और भी विजया-दशमी के कर्तव्य हैं, जिनका सविस्तर प्रतिपादन अपरार्क आदिमें अनेक वाक्य लिख कर किया है.

दो दिन विजयादशमी हो तो राजाओंके पट्टाभिषेकमें सभीके मतसे दूसरी विजया दशमी ग्राह्य है. दूसरे कार्य जिस दिन श्रवण, कर्म करनेके समय रहे उस दिन किये जावें, ऐसा निर्णय कुछ विद्वान् कहते हैं.

दूसरे विद्वान् कहते हैं कि किसी भी समयमें दशमीका स्पर्श करनेवाला श्रवण कर्म करनेके समय जिस दिन रहे, उस दिन विजया दशमी मानी जावे.

कुछ अन्य विद्वान् कहते हैं कि जो दशमी किसी भी समय श्रवणका स्पर्श करती हो वह जिस दिन कर्मकालके समय रहे उस दिन विजया दशमी है.

श्रवण और दशमी का सर्वथा सम्बन्ध न हो, तब तो सभी विद्वान् "तिथिः शरीरं तिथिरेव कारणम्" इस लल्लवचनके आधार पर तिथिको ही प्रधानता देते हैं.

बहुत विद्वान् अपराह्नको विजयादशमीका कर्मकाल कहते हैं.

दूसरे, (अर्धास्त सूर्यके अनन्तर तारा निकलनेसे पहले) कुछ संध्याका उल्लंघन किया हो एसे प्रदोष समयको कर्मकाल कहते हैं.

कोई विद्वान् तीन भागोमें विभक्त किये हुए दिनके तृतीय भागको अपराह्न और दूसरे पांच भागोमें विभाग किये हुए दिनके चतुर्थ भागको अपराह्न मानते हैं,

कोई ग्यारहको माने, कोई पन्द्रहवेंको और कोई प्रदोषको (सूर्यास्तके बाद दो घडी) विजय मुहूर्त मानते हैं.

सिद्धान्त : उपर्युक्त मतोंमेंसे कौन मत आदर करने योग्य हैं? उत्तर यह है कि "तत्र तिथिद्वैधे"से प्रारंभ कर "श्रवणस्य कर्मकालव्याप्त्या केचन निर्णयमाहुः" पर्यन्त ग्रन्थसे सर्वप्रथम मत दिखाया है वही आदर करने योग्य है. क्योंकि इससे शास्त्रने जो नक्षत्रको प्रबल बताया है यह सार्थक होता है. वचनोंमें खींचातानी नहीं करनी पडती है. वचनोंकी व्यवस्था अच्छी लगती है. और सभी कर्तव्य कार्योके अनुष्ठानकी आसानी भी रहती है. यह सब इस प्रकार है :

कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण पञ्चम प्रपाठकके दूसरे अनुवाकके आरम्भमें "यत्पुण्यं नक्षत्रम्" श्रुति है. यह अनारभ्याधीत है. अर्थात् किसी कर्म विशेषके सम्बन्धमें नहीं पढी गयी है, किसी भी वचनके द्वारा कर्मविशेषके साथ इसका सम्बन्ध प्रमाणित नहीं होता है. अतएव यह क्रत्वर्थ नहीं, किन्तु पुरुषार्थ है. भाष्यकार सायणने कहा कि उक्त श्रुतिका सायणानुसारी अर्थ यह है : ज्योतिःशास्त्रके अनुसारी कर्ता और कर्मके अनुकूल जो पुण्य नक्षत्र है उसका उषःकालके समय यह निश्चय करना चाहिये कि आकाशमें सूर्यके उदय प्रदेशसे इतनी दूरी पर यह नक्षत्र रहेता है. 'उषःकाल'का स्पष्टीकरण करनेकेलिये कहते हैं कि, जब सूर्य उदय होता है, तब कार्यकर्ता पुरुष नक्षत्रको नहीं पाता है, अर्थात् सूर्य तेजसे नक्षत्र लुप्त हो जाता है. नक्षत्रसे पूर्वके स्थान जहां सूर्यके पहुंचने पर नक्षत्रोंका देखना बंध हो जाता है, जघन्य कहा गया है. इस स्थान पर जितने समय सूर्य जावे उतने समयमें नक्षत्रको देखे और कार्य प्रारम्भ करें. अर्थात् उषःकालमें कार्य प्रारम्भ करें. जो इस प्रकार नक्षत्रज्ञानको प्राप्त कर उषःकालमें कार्य प्रारम्भ करनेवाला हो वह पुण्यदिनमें नक्षत्रमें ही करता है, अर्थात् उसका किया हुआ कर्म पुण्य दिनमें किया नक्षत्रमें हुआ सफल होता है.

अब इस प्रकार कर्म करनेका सम्प्रदाय बताते हैं कि मात्स्य नामक किस ऋषिने यज्ञेषुनामक शतद्युम्न (धनी) पुरुषको ऐसे समयमें कार्यमें प्रवृत्त कर श्रेष्ठ बना दिया.

"यत्पुण्यं नक्षत्रम्" यह श्रुति पुण्य नक्षत्रके दिन कार्य करनेका विधान करती है, अल्प नक्षत्रमें बडा कार्य कैसे हो सकता है यह विचारणा हुई, सूर्यतेजसे लुप्त होनेसे पूर्व उषःकालमें उस पुण्य नक्षत्रको प्रत्यक्ष देखना चाहिये, यह विधान करते हैं. याने कर्म करनेके दिन कर्मोपयोगी नक्षत्र अल्प भी हो तथापि उषःकालमें यदि उसका दर्शन किया जाय तो पूरा फल देता है. इसलिये उसको प्रत्यक्ष देखनेका विधान करते हैं : "एवं ह वै यज्ञेषु च" इस अंशमें एक दृष्टान्त और शिष्टाचार श्रुति दिखाती है. यदि नक्षत्र फल देनेवाला होनेसे प्रबल है, ऐसा अभिप्राय श्रुतिका न होता तो ऐसा विधान क्यों करते! अतएव नक्षत्र, तिथि-योग-करण आदि अन्यकी अपेक्षा अवश्य प्रबल है. ज्योतिष सिद्धान्तके अनुसार सभी फल अनुकूल नक्षत्र पर चन्द्र आता है तब मिलते हैं.

अब यहां शंका है कि प्रस्तुत अनुवाकके पूर्व अनुवाकमें वैकृति नक्षत्रेष्टिकाके मन्त्र पढे गये हैं और प्रस्तुतमें नक्षत्र सम्बद्ध पुण्यकालोंका निरूपण किया जा रहा है, इसलिये प्रसङ्गगकी सङ्गतिकेलिये इसे भी वैकृतिनक्षत्रेष्टिका सम्बन्धि मानना उचित है.

इसका निराकरण यह है कि "यत्पुण्यं नक्षत्रम्" इस उपर्युक्त श्रुतिसे तिसरे क्रमका मन्त्र "यां कामयेत दुहितरं प्रिया स्यादिति" यह है. इसमें कहा है कि जो पिता यह चाहे कि मेरी कन्या अपने पतिकी प्रिया बने, वह उस कन्याका स्वाति अभिजित् रेवति नक्षत्रमें दान करे, जिससे वह अवश्य प्रिया हो जाती है.

चोथे क्रमका मन्त्र "अभिजिन्नाक्षत्रम् उपरिष्टादाषाढानाम्" यह है. इसमें कहा है कि देवोंने अभिजित् नक्षत्रमें युद्ध कर दैत्यों पर विजय प्राप्तकी. इसलिये जो पुरोहित यह चाहे कि मेरा राजा अजय्य शत्रुसेनाको जीते, वह अभिजित् नक्षत्रमें युद्धप्रयत्न करावे. पांचवे क्रमका मन्त्र "प्रजापतिः पशून् असृजत"से प्रारम्भ कर "यत्किंचार्वाचीनम् सोमात्" तक है. इसका आशय यह है कि प्रजापतिने पशुओंको उत्पन्न किया. वे पशु अपने स्वामियोंके घर रेवती भिन्न सभी नक्षत्रोमें गये, परन्तु साधारण दशामें ही बने रहे, बढे नहीं. जब रेवतीमें स्वामियोंके घर गये तो बहुत बढे. इसलिये सोमयागसे पूर्वके पशु सम्बन्धी सभी कर्म रेवतीमें करें, जिससे पशु बढते हैं. इस प्रकार "यां कामयेत" "अभिजिन्नाम नक्षत्रम्" "प्रजापतिः पशूनसृजत" इन तीनों श्रुतियोंसे जो प्रस्तुत प्रकरणमें कन्यादान जयोद्योग और पशुवर्धक

कर्मोंका क्रमशः स्वाती, अभिजित् और रेवती इन नक्षत्रोमें करनेका विधान किया है, इसकी संगति नहीं हो सकती. अतएव इसे केवल वैकृति नक्षत्रेष्टिकासे सम्बन्ध मानना उचित नहीं.

"यत्पुण्यं नक्षत्रम्" इस श्रुतिमें 'पुण्य' शब्दका अर्थ कार्योपयोगी है, देवनक्षत्र अर्थ नहीं है, क्योंकि उपर्युक्त श्रुतियोंमें अभिजित् और रेवती दोनोंको पुण्य नक्षत्र माना है, परन्तु ये देव नक्षत्र नहीं, यम नक्षत्र है ऐसी आगे व्यवस्थाकी है. "कृत्तिका प्रथमम् विशाखे उत्तमम् तानि देवनक्षत्राणि, अनुराधाः प्रथमम्, अथभरणी उत्तरम्, तानि यमनक्षत्राणि" इस श्रुतिमें कृत्तिकासे विशाखा तक देवनक्षत्र और अनुराधा से भरणी तक यमनक्षत्र माने गये हैं.

अब यहां शंका यह है कि पुराण आदिके वचनोंकी क्या गति है? अर्थात् इनमें श्रवणका नहीं है, केवल दशमीको ही विजयदशमी मानी है.

इसका उत्तर यह है कि जिस वर्ष विजयादशमी सर्वथा श्रवण रहित आती है, उस वर्षकी विजयादशमीसे इनका सम्बन्ध है; क्योंकि कश्यपने अपने वचनमें 'तद्दिनर्क्षे' इस अंशसे स्पष्ट किया है, विजयादशमी दिनके श्रवण नक्षत्रमें सीमोल्लङ्घन करें. इस प्रकार श्रवण नक्षत्रकी प्रधानता बताई है.

यदि उत्तरपद लोपी समास मानकर यह कहा जाय, तो ऐसा समास पर नक्षत्रकी ही प्रधानता नहीं आती है, अर्थात् तिथि नक्षत्र दोनों तुल्य ग्राह्य प्रमाणित होते हैं, तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि इससे दशमीका श्रवणके साथ सम्बन्ध रहना प्रमाणित होता है, विशेषणांशमें प्रविष्ट होनेसे प्रधानता साबित नहीं हो सकती.

राजाओंके लिये कर्मकाल तीन भागोंमें विभक्त किये गये हैं. दिनका तृतीय भाग अपराह्ण है, जो कि 'विजय' नामक दो मुहूर्तोंसे युक्त होता है. उक्त समयमें ही गोपथ ब्राह्मणमें कहे हुए सभी कार्योंका सौकर्यके साथ करना सम्भव है. दूसरोंके लिये प्रदोष और पन्द्रहवां विजय मुहूर्त मुख्य कर्मकाल (दिनके अन्तिम पन्द्रहवें भागसे लेकर दो घडी कच्ची रात जाते तक) है. क्योंकि "आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां सर्वराशिषु" इस भृगुवचनमें प्रथम सायंकालको कर्मकाल कहा है. बादमें ग्यारहवां मुहूर्त भी विजय है इस प्रकार स्पष्ट ही ग्यारहवें मुहूर्तकी गौणता बताई है.

राज्याभिषेक :

सबका निष्कर्ष यह निकला कि दशमी यदि शुद्धाधिका दो हो और श्रवण पहले दिन ही हो तो राजाओंका पट्टाभिषेक भी पहले दिन करना योग्य है. और दूसरे दिन श्रवण हो तो दूसरे दिन करना योग्य है. क्योंकि एक अतिदुर्लभ योग उपलब्ध होता है. यदि दोनों दिन श्रवण न हो तो पहले दिन ही पट्टाभिषेक करना योग्य है. कारण यह कि एकादशीके सिवा दूसरी तिथियां यदि वृद्धि पाकर दो हों तो ''षष्टिदण्डात्मिका यास्तु'' इत्यादि वचन धर्मकार्योमें बढी उत्तर तिथिका निषेध करते हैं. यदि पले दिन नवमीविद्धा दशमी हो और दूसरे दिन शुद्ध दशमी हो तो पट्टाभिषेक दूसरी दशमीमें करना चाहिये. पट्टाभिषेकमें नवमी विद्धा दशमी लेनेका निषेध है. यदि नवमी विद्धा दशमीका क्षय हो जावे तो पट्टाभिषेक ही नहीं करना चाहिये. क्योंकि शुद्ध दशमी न मिलने पर नवमी विद्धा दशमीमें भी पट्टाभिषेक कर लें, ऐसा कोई पुनर्विधान शास्त्रमें नहीं है.

सीमोल्लंघन :

अपराजितापूजन, सीमोल्लंघन आदि अन्य कार्य पहले दिन नवमी विद्धा दशमीमें हो, कर्म करनेके समय श्रवण हो तो पहले दिन और दूसरे दिन शुद्ध दशमीमें कर्म करनेके समय श्रवण हो तो दूसरे दिन करना उचित है, यदि दोनों दिन समान या न्यूनाधिक एक अंशमें श्रवण रहता हो तो पहले दिन करना उचित है. क्योंकि नवमी युक्त विजया दशमी श्रेष्ठ मानी गई है.

''एकादश्यां न कुर्वीत पूजनं चापराजितम्''

''दशमीं य: समुल्लङ्घ्य प्रस्थानं कुरुते नृप:''

इत्यादि वचनोंमें एकादशीका निषेध है, यह अपराजितापूजन और राजाओं के विजयप्रस्थानके विषयमें है (सर्व साधारणके द्वारा किये जानेवाले सीमोल्लंघन आदिके विषयमें नहीं है).

भगवत् सेवामें यवांकुरार्पण उपर्युक्त प्रकारके ही दशमीमें (श्रवणकालके समय जिस दशमीमें रहे, उसमें या केवल कर्मकालव्यापिनी दशमीमें) करना चाहिये इसमें शंकाको कोई अवकाश नहीं है.

उपर्युक्त ग्रन्थके अनुसार विजयादशमीके भेद इस प्रकार हैं :

1.दिनद्वयेऽपि कर्मकालव्यापिनी श्रवणयुक्ता विद्धाधिका : पट्टाभिषेकके अतिरिक्त समीकार्य पहले दिन होते हैं.

2.श्रवणयुक्ता अन्यतर दिने कर्मकालव्यापिनी विद्धाधिका : जिस दिन कर्मकालव्यापिनी हो उस दिन सब कार्य होते हैं. पट्टाभिषेक दूसरे दिन ही होता है.

3.श्रवणयुक्ता दिनद्वयेऽपि मुख्यकर्मकालाव्यापिनी विद्धाधिका : इसकी व्याप्ति दूसरे दिन गौण कर्मकालमें अवश्य रहती है. इसलिये सब कार्य दूसरे दिन होते हैं.

4.श्रवणयुक्ता शुद्धाधिका : जिस दिन कर्मकालमें नवमी श्रवण हो उस दिन सब कार्य होते हैं.

5.श्रवणयुक्ता विद्धोना : पट्टाभिषेकके अतिरिक्त सब कार्य इसमें होते हैं.

6.श्रवणयुक्ता शुद्धोना : इसमें पट्टाभिषेक आदि सभी कार्य होते हैं.

7.श्रवणरहिता विद्धाधिका : जिस दिन कर्मकाल व्यापिनी हो उस दिन सीमोल्लंघन आदि सब कार्य होते हैं. पट्टाभिषेक दूसरे दिन ही होता है.

8.श्रवणरहिता शुद्धा : यह जब शुद्धाधिका हो तो पट्टाभिषेक आदि सब कार्य पहले दिन ही होते हैं. शुद्धोनामें कोई विवाद नहीं.

रासोत्सव :

आश्विन शुक्ल पौर्णमासीके दिन रासोत्सव होता है. वह जिस रात्रिमें चन्द्रबिम्ब परिपूर्ण हो उस 'राका' नामक रात्रिमें करना उचित है. जिसमें एक कला न्यून हो ऐसी 'अनुमति' नामक रात्रिमें करना ठीक नहीं. क्योंकि अखण्ड चन्द्रमण्डलका आनन्द राकामें ही मिल सकता है. अर्थात् जिस दिन पूर्णिमामें चन्द्रोदय हो उस दिन करना उचित है. ऐसी पूर्णिमामें प्राय: चतुर्दशीका वेध होना सम्भव है, परन्तु वह "युग्माग्नियुगभूतानाम्" इस युग्मवाक्यके अनुसार ग्राह्य है. इस तरह आश्विनके उत्सव समाप्त हुए.

कार्तिकोत्सव

हेमाद्रि, निर्णयामृत, निर्णयसिन्धु, निर्णयदीप, समयालोक, दिनकरोद्योत और भगवद्भास्कर इन ग्रन्थोंमें दीपोत्सवसे सम्बन्ध रखनेवाले वचनोंका संग्रह किया जाता है. ज्योतिर्निबन्धमें स्थित नारदवचन "आश्विने कृष्णपक्षे तु" आश्विन कृष्णमें द्वादशी आदि पांच तिथियोंमें रात्रिके पूर्वार्धमें नीराजनकी (आरतीकी) विधि कही

गई है.

धनत्रयोदाशी :

धनत्रयोदशीका कर्तव्य स्कन्दपुराणके "कार्तिकस्यासिते" इस वचनमें बताया है. आशय यह है कि कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीको सायंकालमें घरसे बाहर यमकेलिये दीप देवें. इससे दुर्मरण नहीं होता है.

नरक चतुर्दशी :

नरक चतुर्दशीका कर्तव्य प्रकार कहते हैं :

"भगवान् श्रीकृष्णके अवतार कालमें एक 'नरक' नामका दैत्य उत्पन्न हुआ था. उसको भगवान् श्रीकृष्णने वर दिया था कि कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी तेरे नामसे नरक चतुर्दशी मानी जायगी. इस दिन सभी मनुष्य तेल लगाकर अवश्य स्नान करें, जिससे नरककी प्राप्ति न हो".

यही पद्मपुराण उत्तरखण्ड श्रीकृष्णचरित्रमें भगवान् शंकरने पार्वतीजीसे "अन्य लोक हितार्थाय" इत्यादि वचनोंसे कहा. इन वचनोंमें नरकासुर कहता है कि

"भगवान् श्रीकृष्ण! जो मनुष्य मेरी मरण तिथि कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीके दिन तेल लगाकर स्नाक करें उनको नरक सर्वथा प्राप्त न हो". भगवानने "एवम् अस्तु" (ऐसा ही हो) कहकर उसे वर दिया.

भविष्योत्तर और ब्रह्मपुराण के "कार्तिके कृष्णपक्षे" वचनमें यह उल्लेख है कि कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीके दिन सूर्योदयके समय नरकसे डरनेवाले अवश्य स्नान करें. इस श्लोकका पाठ "अवश्यमेव कर्तव्यम्" की जगह कहीं "तिल तैलेन कर्तव्यम्" भी है. 'इनोदये' की जगह पुराण और पुस्तक भेदसे 'इनोदये', 'दिनोदये', 'इवोदये', 'विधूदये'

ऐसे चार प्रकारके पाठ मिलते हैं, जिनका क्रमश: अर्थ यह है कि 'सूर्योदयके समय' 'दिनके उदय समय', 'सूर्योदयके समय', 'चन्द्रोदयके समय'.

उपर्युक्त पुराणमें ही "तैले लक्ष्मीर्जले गंगा" वचन है, जिसका आशय यह है कि "दीपावलिकी चतुर्दशी आने पर तैलमें लक्ष्मी और जल में गङ्गाका निवास है, जो प्रात: काल स्नान करें, यह यमलोकको नहीं देखता है". "तैले लक्ष्मी" श्लोकमें 'चतुर्दशीम्' यह द्वितीया अपरसे अध्याहार की जानेवाली 'प्राप्य' क्रियाके योगमें है ऐसा निर्णयसिन्धु कहता है. सप्तमीके अर्थमें द्वितीया है यह दिनकरोद्योत कहता है.

"अमावस्या, संक्रान्ति, रविवार, व्यतीपात और क्षयतिथिमें भी प्रातःकाल पाप निवारणकेलिये तैल लगाना दूषित नहीं". (कश्यपसंहिताका वचन)

"मनुष्य स्वेच्छानुसार अपने आनन्दकेलिये जो तैलमर्दन पूर्वक स्नान करते हैं, उसका दशमी आदि तिथियोंमें निषेध है, नित्य नैमित्तिक कार्योमें ऐसे स्नानका निषेध नहीं है". (स्मृति वचन)

"त्रयोदशीसे विद्धा आश्विन कृष्ण चतुर्दशीको प्रातः काल प्रयत्नपूर्वक स्नान करें, अनन्तर धर्मराजके नामसे तर्पण करें". (भविष्योत्तर)

"सिर पर अपामार्गको घुमाकर यमतर्पण करें. देवपूजा करनेके बाद नरकासुरकेलिये दीपदान करें". (ज्योतिर्निबन्धस्थित भविष्योत्तरका वचन)

किसीने 'अपामार्गम्' इस वचनका गार्ग्यवचन कहकर उल्लेख किया है.

"जो मनुष्य चतुर्दशीके दिन अरुणोदयसे भिन्न समयमें स्नान करता है उसका किया वार्षिक धर्म नष्ट हो जाता है, कोई संशय न हो". (भविष्यपुराणका दिवोदासीय वचन)

"आश्विन कृष्ण चतुर्दशीके दिन ('कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीके दिन') सूर्योदयसे पूर्व रात्रिके पिछले प्रहरमें तैलमर्दन करना विशेषता रखता है". (सर्वज्ञनारायणका वचन)

'त्रयोदशी यदा प्रातः' वचन जिसका स्थूल आशय यह है कि चतुर्दशीका क्षय हो तो तैल मर्दन त्रयोदशीमें करें यह निर्मूल है, ऐसा निर्णयसिन्धु कहता है. भगवद्भास्कर कहता है कि प्रामाणिक है.

"आश्विनके अतिरिक्त(कार्तिकके अतिरिक्त)अन्य मासोंमें द्वितीया दशमी त्रयोदशीको तैलमर्दन पूर्वक स्नान न करें".(काचित्क वचन)

"प्रेत चतुर्दशीके दिन (नरक चतुर्दशीके दिन) मनुष्य उडदकी पत्तीके शाकके साथ भोजन करें तो सब पापोंसे रहित हो जाता है". (लिङ्गपुराण)

कहीं 'माषपत्रस्य' वचनको पद्मपुराणका बताकर आगे "ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यान्मनोरमान्" इत्यादि कई वचनोंसे चतुर्दशीको रात्रिमें दीपदान करनेकेलिये कहा है और रात्रिमें भोजन करनेको कहा है.

अमावास्या :

अमावास्याका निर्णय इस प्रकार है :

"आश्विन कृष्ण अमावास्याके दिन तैलाभ्यङ्ग आदि मङ्गल कार्य कर दारिद्‌य्र दूर करनेकेलिये भक्ति पूर्वक महालक्ष्मीकी पूजा करें". (कालादर्शक वचन)

भविष्योत्तर और आदित्यपुराणमें तैलाभ्यङ्गका विधान बताकर "एवं प्रभातसमये" आदि वचनोंसे यह कहा कि

"अमावास्याके दिन प्रातःकाल स्नान कर देव-पितरोंकी भक्तिपूर्वक पूजा करें प्रणाम करें! दहीं, दूध, घी आदिसे पार्पण श्राद्ध जिसमें तीनसे कम पितरोंकी पूजा न करें. बालक और आतुर (बीमार)के सिवा दूसरे, दिनमें भोजन न करें. प्रदोषकालमें लक्ष्मीपूजन कर शक्तिके अनुसार देवमन्दिर, चौराये, स्मशान, नदी, पहाडी, मकान, वृक्षोंके मूल, गौशाला, चोक और भवनोंमें रोशनीके झाड लगावें. वस्त्र और पुष्पमालाओं से बाजारोंको सजावें. चारों और दीपकोंसे घिरे हुए प्रदेशमें प्रथम भूखे ब्राह्मणोंको भोजन करावें. बादमें नये वस्त्र और अलङ्कारोसे सुशोभित हो स्वयं भोजन करें".

"ततः प्रदोष" आदि वचनोंमें कहा कि "ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवोंके मन्दिरोंमें छात्रालयोंमें शहर पनाहो पर बागोमें बावडियों पर गलियोंमें गृहवाटिकाओंमें सभी पायगां और फिलखानों में प्रदोषकालमें सुन्दर दीपक लगावें". (स्कन्दपुराण)

स्कन्दपुराणान्तर्गत पुरुषोत्तममाहात्म्यमें उत्थापन महोत्सवके प्रसङ्गमें "पूजयित्वा जगन्नाथम्" इत्यादि वचनोंसे दीपोत्सवका अनुवाद किया है.

"कार्तिक कृष्ण अमावस्याके प्रदोषकालमें पृथ्वी पर यथेष्ट चेष्टावाला दैत्योंका राज्य प्रारम्भ हो जाता है". यहांसे प्रारम्भ कर आगे "ततोऽपराह्ण" वचनमें कहा कि "दिनके तीसरे प्रहर राजा नगरमें घोषणा करें (डोंडी पिटवानवे) कि आज महाराज बलिका राज्य है. लोग ईच्छानुसार आहार विहार करें. शहरमें प्रत्येक भवनके चौकमें खडिया मिट्टीसे अंग

वल्लियां लिपी जावें. यथेष्ट गायन वादन हो. सुन्दर दीपक लगावे जावें. मनुष्य परस्पर प्रेमपूर्वक प्रसन्न हो तालियां पीटे, पान खावें, शरीर पर केसरका लेपन करें, रेशमी मखमली कपडे और सुर्वणके भूषण पहिनें. मित्र, भाई-बन्धु, सम्बन्धी, सगौत्र जनोंका आदर किया जावे. एवं ऐसे सजे हुए शहरमें लोग भ्रमण करें. बादमें अर्धरात्रिके समय राजा बडे गाजे बाजेके साथ मशालचियोंको लिये हुए पैदल धीरे-धीरे नगरकी सुन्दरताको देखनेकेलिये भ्रमण करें. कृत्रिम घोडे और मनुष्योंसे मकानोंकी शोभाका आनन्द प्राप्त करें. बलिराज्यका उत्सव देखकर घर लोटे. इस प्रकार अर्धरात्रि व्यतीत होने पर जब मनुष्य उंघने लगे तो प्रसन्न होती हुई नगरकी स्त्रियां सूपडेसे डोंडी पीटकर अपने घरके आंगनेसे अलक्ष्मीको (कूट कर) निकालती हैं". (भविष्योत्तर)

"आश्विन कृष्ण अमावास्याके दिन श्राद्ध कर प्रदोष कालमें दीपदान करें, एवं जलते हुए पालितोंसे या लकडियोंसे पितरोंको मार्ग दिखावें. पितृभक्त अपराह्नमें श्राद्ध करें और प्रदोष कालमें दीपदान करें". (ज्योतिर्निबन्ध स्थित भविष्योत्तरका वचन)

"कार्तिक आमवास्याके दिन (नरकासुर मरजानेके कारण) सब देवोंने भगवान् विष्णुसे अभय प्राप्त किया और सुखपूर्वक कमलमें सोयीं, अतएव लक्ष्मीकी प्रसन्नताकेलिये यथाविधि सुखशय्याकी रचना करनी चाहिये. अर्धरात्रिके समय लक्ष्मी भानोंका आश्रय लेनेकेलिये भ्रमण करती है. इसी लिये मनुष्य अपने घरोंको खडि या मिट्टीसे पोते, लीपे, पुष्पमालाओंसे शोभित करें, दीपकोंसे शोभित करें. मनुष्य जागरण कर उत्सव करें, नारियलका पानी पीकर जुआ खेलें. वर देनेवाली लक्ष्मी अर्धरात्रिके समय "कौन जागता है" यह पूछती हुई कहती हैं कि "मैं उसे द्रव्य देती हूं जो जुआ खेलता है". (आदित्यपुराण)

कहीं यह उल्लेख है कि आश्विनकी समाप्तिमें (कार्तिक कृष्ण अमावास्याके दिन) पितरोंके लिये पिण्डदान करने पर भी रात्रिमें स्त्रीसहवास, जागरण, लक्ष्मीपूजन और जुआ खेलना दूषित नहीं है. कुबेरपूजा और अर्धरात्रि के समय लक्ष्मी पूजा करनेका भी उल्लेख है.

प्रतिपदाका कर्तव्य इस प्रकार है :

"प्रतिपदाके दिन सूर्योदयके समय तैलमर्दन कर नीराजन विधि (आरती) करें. सुन्दर वेष धारण कर कथाएं गान और दान विधियोंसे दिवस व्यतित करें". (ज्यातिर्निबन्ध)

"वर्ष और वसन्त के प्रारम्भमें तथा बलिराज्यमें जो तैलाभ्यङ्ग नहीं करता है वह नरक प्राप्त करता है". (वसिष्ठ)

“कार्तिक शुक्ल पक्षमें दो कार्य किये जावें, प्रातःकाल सुवासिनीयोंके द्वारा नीराजन और सायंकाल मंगलमालाएं बांधना”. (ब्रह्मपुराण)

“प्रातः गोवर्धनकी पूजा करें, जुआ खेलें और ग्वालों सहित गायोंको अलंकृतत करें और पूजा करें”.(स्कन्दपुराण)

“कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाके दिन भगवान् शंकरने सत्य व्यवहारसे परिपूर्ण बडा सुन्दर जुएका खेल खेला. उसमें शंकर हार गये और पार्वती जीतीं, जिससे शंकर सदा भिक्षुवत् हैं और पार्वती आनन्द कर रही हैं. इसलिये मनुष्योंको प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल जुआ खेलना चाहिये. उस जुएमें जो जीतता है, वर्ष भर उसीकी जीत होती है, और हारता है उसकी हानि होती है. शरीर पर चन्दन केसरका लेपन कर सुन्दर वस्त्र अलङ्कार पहिनकर गायन वादन सुनें. विशेष कर श्रेष्ठ भाई बन्धुओंके साथ भोजन करें, उस रात्रिमें सोनेका कमरा, पलंग वगैरा सुन्दर सजावे. गुलाबजल इस पुष्प वगैरासे सुगन्धित बनावें, वस्त्र और दिव्य रत्नोंसे अलंकृत करें, चारों और दीपक लगावें. धूपसे धूपित करें. ऐसे स्थानमें फिर अपनी प्रियतमा सुन्दरियोंके साथ रात्रि व्यतित करें. नवीन वस्त्रोंसे ब्राह्मण, बंदी जन और भाई बन्धुओंका सम्मान करें”. (आदित्यपुराण)

“कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल जब मनुष्य उत्सवका आनन्द लेकर जागें तो ब्राह्मणोंका अभिवादन करें, परस्पर यह पूछें कि क्या रातका आनन्द अच्छा रहा! तब राजा सब मनुष्योंको दान-मान आदिसे संतुष्ट करें. सौभाग्यवती स्त्रीयोंकेलिये वस्त्र अलङ्कार देवें. ब्राह्मणोंको सद्भाव और दान से प्रसन्न करें. विद्वान पुरुषोंको खान-पान और सन्मानसे सन्तुष्ट करें. जनानखानेकी रानियों और भोगिनी आदि स्त्रियोंको पुरुष मालाएं, पान, कपूर, केसर, वस्त्र और सन्मान देकर प्रसन्न करें, फौजो सिपाहियोंको अपने नामसे अंकित सुन्दर कडा, कंठी आभूषण दे कर संतुष्ट करें. भाई बन्धुओंका सत्कार पृथक् करें. बैल, पाडे, हाथी, घोडे और पैदल सिपाही इनको सजावें. एवं ये जब परस्पर सजातीय वर्गमें दंगल खेलें तब इनको एवं नट-नर्तक चारणोंको राजा स्वयं मञ्च पर बैठ कर देखे. गायें जैसे पशुओंको खिलावें एवं छेड-छाड करें. यह खेल प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल करें. बादमें प्रतिपदाके दिन तीसरे प्रहर बडे उंचे स्तम्भो पर या वृक्षों पर डाव और कासे बनी हुई बडी सुन्दर रस्सी (जिसके कई फूंदे लटके हुए हों) बांधी जावें. वहीं इनका नीराजन करें, जो राष्ट्रको जय देनेवाला है. मार्गवाली नामक उपर्युक्त रस्सीके नीचेसे इस प्रकार गायें, बैल, हाथी, घोडे एवं उक्त रस्सीको उलांघकर निकलनेवाले राजा, राजकुमार, ब्राह्मण, शूद्र आदि जातियां सभी निरोग और सुखी रहते हैं. यह कार्य सभी दिनमें पूर्णकर रातको मण्डल बनाकर दैत्येन्द्र बलीकी पूजा करें”.(भविष्योत्तर)

बलिपूजाविधि :

"राजा अपने विशाल भवनके मध्यभागमें पांच प्रकारके रंगोसे विन्ध्यावली सहित दो भुजावाली बलीराजाकी मूर्तिको लिखकर पूजा करें. सर्व साधारण मनुष्य अपने घरमें सफेद चांवलोंसे बलीराजाके उद्देश्यसे जो दान दिये जाते हैं, वे अक्षय होते हैं ऐसा शास्त्र कहते हैं. यह सब विधि मैंने तुम्हे दिखाई. इस बलि प्रतिपदाके दिन भी थोडा बहुत दान दिया जाता है वह सभी अक्षय और भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला होता है. हे युधिष्ठिर! इस दीपोत्सवका सभी राजा कौमुदी इस कारण कहते हैं कि 'कौ=पृथ्वी पर 'मु(मुत्)=खुशी बलीराजाकी, 'दी' दी जाती है. हे युधिष्ठिर! इस दीपोत्सवके अवसर पर जो मनुष्य हर्ष या विषादके भावसे रहता है उसका सारा वर्ष वैसे ही भावसे व्यतित होता है, इसलिये यह उत्सव आनन्दमें रहते हुए करें. हे राजन् युधिष्ठिर? जो बुद्धिमान मनुष्य सबको आनन्द देनेवाले इस दीपोत्सवके अवसर पर बलीराजाकी पूजा करते हैं उनका सारा वर्ष सैंकडो दानोपभोग और सुखसमृद्धिके साथ बडे आनन्दसे व्यतित होता है".

रज्जुका कर्षण :

"डाब और कासडेकी एक मजबूत नई रस्सी बनाकर उसे समान संख्यावाले और समान बलवाले राजकुमार एक ओरसे और हीन जातिवाले दूसरी औरसे अपनी शक्तिके अनुसार बार-बार खींचे. जो अपनी ओर खींचकर जीत जावें उनका सम्पूर्ण वर्षमें जय होता है. यह जयकी पहिचान राजाको प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिये". (आदित्यपुराण)

दो दिनोंका कर्तव्य :

"तुलासंक्रान्तिमें चतुर्दशी और अमावस्याके दिन प्रदोषकालमें हाथोमें जलते हुए पलीते लिये हुए मनुष्य पितरोंको मार्ग दिखायें". (ज्योतिषका 'तुलासंस्थे' वचन)

"कार्तिक अमावस्या और चतुर्दशी के दिन प्रदोषकालमें दीपदान करनेसे मनुष्य यममार्गके यमपुरीके मार्ग अन्धकारोंसे मुक्त हो जाता है". (ब्रह्मपुराणका दिवोदासीय वचन)

तीनों दिनका कर्तव्य :

"आश्विनकी चतुर्दशी अमावस्या और कार्तिक की प्रतिपदा इन तीनों दिनोंमें जब स्वाती नक्षत्र हो, अरुणोदय हो तो तैल मर्दन पूर्वक स्नान करना चाहिये. शुक्ल द्वितीया

पर्यन्त स्वाती नक्षत्रयुक्त प्रातःकालमें मंगलस्नान करनेवाला लक्ष्मीसे रहित नहीं होता है. इन दिनोंमें दीपकोंसे नीराजन (आरती) किया जाता है, इस लिये इसे दीपावली कहते हैं". (ब्रह्मपुराणका पृथ्वीचन्द्रोदयस्थित वचन)

"आश्विन कृष्णा चतुर्दशी अमावास्या और कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा —इन तिथियोंमें जब स्वाती नक्षत्र हो तो दीपावली होती है. दीपोत्सवके तीनों दिन एक साथ रखे जावें. कहीं शास्त्रमें ऐसा दोष भी पढते हैं कि दीपोत्सवके तीनों दिन एक साथ रखे जावें. तीनके दिन समयमें अतिथि वामन रूपसे याचना कर इन्द्रको ही और बली को पातालमें रहनेवाला बनाया, परन्तु दीपोत्सवके ये तीन अहोरात्र बलीको पृथ्वी पर रहनेकेलिये दिये". (ज्योतिर्निबन्ध स्थित नारोद वचन)

कालनिर्णयमें मध्याह्नकालमें शास्त्रका निर्णय :

"अमान्त आश्विनकी चतुर्दशी आदि तीन तिथियां दीपदान आदि कार्योमें मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्य है. सूर्यबिम्ब जब आधा उदय हो वहांसे तीन मुहूर्त प्रातःकाल हैं, बादमें तीन-तीन मुहूर्तोके क्रमशः संगव मध्याह्न शारद और सायाह्न हैं. यदि संगवसे पूर्व वे तिथियां समाप्त होती हो तो दीपदान आदि कार्योमें पूर्वविद्धाकी जावें. यदि संगवके अनन्तर भी रहती हो तो परविद्धा ली जावें". (ज्योतिर्निबन्ध)

कहीं शास्त्रमें 'अमायामाश्विने' यहांसे प्रारम्भकर 'रिक्तायुक्ते' इत्यादि वचनोंसे यह कहा है कि

"चतुर्दशीसे युक्त अमावास्यामें यदि श्राद्धका समय न मिले तो दूसरे दिन श्राद्ध दीपदान और उल्मुक किये जावें. यदि श्राद्धके समय अमावस्या हो और अपराह्नमें प्रतिपदा आ जावें तो उस दिन सायंकालमें दीपदान आदि कार्य दूषित नहीं है. अमावास्याका श्राद्ध किये बिना जिस देशमें दीपदान और उल्मुक रोशनीसे पितरोंको मार्ग दिखाया होता है वह शत्रु अग्नि और चोरों से नष्ट हो जाता है".

"बिना निमित्त एक दिनमें दो श्राद्ध एक मनुष्य कभी न करे, यदि निमित्त हो तो करे. निमित्त होने पर भी वृद्धि और महालय दो नहीं हो सकते" (क्वाचित्क वचन)

"चतुर्दशीके सायंकालमें अमावास्या दीखे तो उस दिन श्राद्ध और दीपदान पितरोंकेलिये अक्षय होता है. तुला संक्रान्तिमें अमान्त आश्विन कृष्ण चतुर्दशीके दिन सायंकालमें कलामात्र समय भी अमावास्या हो तो अपराह्नमें श्राद्ध और सायंकाल में दीपदान उल्मुक करना चाहिये".(क्वाचित्क)

गोक्रीडा:

"प्रातः अमावास्या युक्त प्रतिपदा गोक्रीडामें ली जावें. जब विश्वकी जननी गाएं प्रतिपदा युक्त अमावास्यामें क्रीडा करती है तो घोडोंको व्याधिका और राजाओं को शस्त्रोंका भय नहीं होता है. जहां प्रतिपदा और अमावास्या के संयोगमें गाएं पूजी जाती है, वहां राज्य आयु, धन और पुत्र बढते हैं. कार्तिक कृष्ण पक्षमें तुलासंक्रान्ति हो तो गोक्रीडाके कार्यमें भद्रा तिथिका (द्वितीयाका) त्याग करना चाहिये".

"जहां प्रतिपदा कुछ द्वितीयासे युक्त हो तो वहां चन्द्रदर्शनका संभव है, इसलिये उसे बलिराजाका दिन मानना ठीक नहीं. जब गोक्रीडाके दिन द्वितीयामिश्रिता प्रतिपदा हो तो प्रजाका आयुःक्षय और राजाका छत्रभंग होता है". (ब्रह्माण्डपुराण)

"आश्विन शुक्लपक्षमें यदि तुलाका सूर्य हो तो अमावास्याके दिन स्त्रियां क्रीडा करें, और गायें कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा क्रीडा करें".(निर्णयभास्कर स्थित ब्राह्मवचन)

"शिवरात्री ओर बलिप्रतिप्रदा पूर्वविद्धा ग्रहण करना उचित है. हे राजन् जो अमावस्या प्रतिपदासे मिश्रित हो उस दिन गायोंकी पूजन करें, जिससे प्रजा, गायें और राजा तीनोंकी वृद्धि होती है". (पद्मपुराण)

"अमावास्या युक्त प्रतिपदामें गोक्रीडा करना अभीष्ट है, जो द्वितीयासे युक्त प्रतिपदामें गोक्रीडा करता है उसके पुत्र, स्त्री ओर धनका नाश होता है". (देवल)

"गोक्रीडाके दिन यदि सायंकाल चन्द्र दृष्टिगोचर हो तो वह गायोंके पूजक और पशुओंका नाश करता है. नन्दाके (प्रपतिपदाके) दीखने पर रक्षाबन्धन, दशमीके दिन बलिदान और भद्रामें (द्वितीयामें) गोक्रीडा करनेसे देशका नाश होता है. प्रतिपदाके दिन अग्निकरण और द्वितीयाके दिन गोपूजा ये दोनों राजा, धन और वंशका नाश करते हैं". (पुराणसमुच्चय)

गोक्रीडामें अमावास्या वेधका निषेध :

"कार्तिक शुक्ल पक्षमें यदि तुलाका सूर्य हो तो गोक्रीडामें अमावास्याका त्याग करना चाहिये. अमावास्यामें क्रीडा करनेवाली गायें नष्ट हो जाती हैं, यह निःसन्देह है. इसके सिवा प्रजानाश राजाका छत्रभ' और आयुःक्षय होता है. यदि प्रतिपदा द्वितीया सहित हो और इसमें गोपूजाकी जावें तो आयुर्वृद्धि प्रजावृद्धि और राज्यवृद्धि होती है. विश्वकी माता गायें अमावास्यामें क्रीडा करें तो घोडोंकी व्याधि होती है, और राजाओंको शस्त्रभय होता है". (ब्रह्मपुराण)

"प्रतिपदाके दिन गोवर्धनपूजा करें. गोवर्धनपूजामें अमावास्यासे युक्त प्रतिपदा ग्रहण करना उचित नहीं, जो दिन प्रतिपद उदय होनेके समय रहती हो वह ग्राह्य है. दिनके प्रथम प्रहरमें नन्दा (प्रतिपदा) हो और भद्राका (द्वितीयाका) क्षय हो तो संपूर्ण वर्ष पवित्र, राज्य और सुख देनेवाला होता है". (शिवरहस्य)

त्रिकामिका और सार्धत्रियामिक शास्त्रकी व्यवस्था :

"अमावास्या सूर्योदयव्यापिनी होकर तिन प्रहर रहे और प्रतिपदा सूर्योदयव्यापिनी होकर साढें तीन प्रहर रहे और वर्धमाना रहे तो दीपोत्सवमें ग्राह्य है, ऐसा मुनियोंने कहा है. इससे अल्प समय रहती हो या प्रतिपदा वर्धमाना न हो तो पहले दिन पूर्वविद्धा ग्राह्य है. विद्धाधिका प्रतिपदा सूर्योदयके बाद साढे तीन प्रहर रहे तो दूसरी (सूर्योदयव्यापिनी) कर्म योग्य कही जाती है".(स्कान्द समुच्चय)

नारीनीराजन और मंगलमालिकाका विधान करनेके बाद "यदि प्रतिपदा अल्प हो तो नारीनीराजन प्रातःकाल प्रतिपदामें और मंगलमालिका सायंकाल द्वितीयामें करें". (ब्रह्मपुराण)

"यदि प्रातःकाल दो घडी कच्ची प्रतिपदा हो तो उसमें नारी नीराजनविधि कर सांयकाल द्वितीयामें मंगलमालिका करें". (भविष्यपुराण)

"प्रातःकाल घटिका मात्र प्रतिपदा हो तो सांयकाल द्वितीयामें मंगलमालिका करें. अमान्त आश्विन कृष्ण अमावस्याके दिन नारीनीराजन हो तो नारियां विधवा होती है और देशमें दुर्भिक्ष होता है. कार्तिक शुक्लपक्षके प्रारम्भमें दो घडी अमावस्या हो तो उसमें मंगलमालिका न करें देशके नष्ट होनेका भय है".(देवीपुराण)

ऐसे और भी अनेक वचन निर्णयामृत, प्रतापमार्तण्ड, विश्वप्रकाश, चन्द्रप्रकाश आदि ग्रन्थोमें हैं.

तिथिके अनुसार कर्त्तव्य :

इन उपर्युक्त वचनोंमें बताये हुए धर्मकार्य इस प्रकार हैं : "चतुर्दशीके दिन सूर्योदयके समय अथवा चन्द्रोदयके समय तैलमर्दनपूर्वक स्नान करें. इसके न करने पर वार्षिक धर्म नष्ट हो जाता है" इत्यादि दोष बताये गये हैं, इसलिये यह नित्य है.

"तैले लक्ष्मीः" वचनमें फल दिखाया गया है, इसलिये काम्य भी हैं. "इस अभ्यंग स्नान करनेके बाद यमतर्पण, शिवभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराना, स्वयं उडदकी पत्तीके

शाकके साथ भोजन करना, नक्तव्रत (रात्रिभोजनव्रत) अवसर मिले तब प्रदोषकालमें दीपदान, मशालकी रोशनीसे पितरोंको मार्ग दिखाना एवं रात्रिके पूर्वार्धमें नीराजन (आरती) करना" —इतने धर्मकार्य चतुर्दशीमें बताये.

अमावस्याके दिन प्रातःकाल मंगलस्नान, देव, गुरु आदिकी पूजा एवं प्रणाम; अपराह्नके समय पार्वणश्राद्ध, प्रदोषकालमें नीराजन (आरती) लक्ष्मी पूजन और दीपदान करें. इनका क्रम भी यही है. पितरोंकेलिये दीपदान, मशाल वगैरासे पितरोंको मार्ग दिखाना, रात्रिमें जागरण अनेक उत्सव गान-वाद्य सुनना, स्त्रीसहवास, इच्छानुसार खेलकूद, अर्धरात्रिके समय लक्ष्मीका भ्रमण, लक्ष्मीकी पूजा, कुबेरकी पूजा और पिछली रातको अलक्ष्मी निस्सारण (कूडा करकट साफ कर सूपमें लेकर फेंकना, सूप बजाना) इतने कर्तव्य बताये हैं.

प्रतिपदाके दिन सूर्योदयके पास तैलादिमर्दन पूर्वक स्नान और स्नानके बाद नीराजन, दिनके पूर्वभागमें गोवर्धनपूजा जुआ खेलना, गायोंकी पूजा, दान-मानोंसे लोगोंका संतोष, गोक्रीडा बैल, हाथी वगैरा पशुओंका युद्ध नारीनीराजन (स्त्रीकतृक आरती), अपराह्नके समय मार्गपालीका समुल्लंघन (डाब और कासडेकी रस्सी बांधकर नीचेसे निकलना), नीराजन (पशुओंकी आरती) और सांयकालमें मङ्गलमालिका, रस्सी खींचनेका कोई समय निश्चित नहीं है. जब अवकाश मिले तभी खींचे. इसके बाद और बताकर रात्रिमें बलिराजाकी पूजा, शय्यास्थानको सजाना और स्त्रीसहवास आदिका विधान किया गया है. चतुर्दशीसे प्रतिपदा तक तीन दिन यहां पृथ्वी पर बलिका राज्य कहा जाता है. इन तीनोंके कर्तव्य बीचमें दिन खाली न रखते हुए किये जावें, ऐसा विधान है.

यह तीनों दिनोंके कर्तव्योंका संग्रह पूर्ण हुआ.

मतान्तर :

इनके निर्णयमें प्रवृत्त हुए कुछ विद्वान्, पहले श्राद्ध और बादमें दीपदान होना चाहिये, यदि विपरीत किये जावें तो दर्शश्राद्ध बिना "यस्मिन राष्ट्रे दीपोल्मुकं भवेत्" यह शास्त्रदोष बताता हैं. अतः इस दोष बतानेवाले शास्त्रसे डरकर श्राद्ध और दीपदान का अंगि'भाव स्वीकार करते हैं. जब पहले दिन सांयकालमें अमावास्या प्रवृत्त हो तो श्राद्ध और दीपदानका उपर्युक्त क्रम निभानेकेलिये चतुर्दशीमें श्राद्ध करना बताते हैं और "सायाह्ने च चतुर्दश्याममा यत्र प्रदृश्यते" यह चतुर्दशीमें श्राद्ध करनेकी फलस्तुति भी करते हैं, और प्रतिपदामें उल्मुक (मशाल वगैरासे पितरोंको मार्ग दिखाना) नहीं हो सकता, इस प्रकार निषेधशास्त्र 'प्रतिपद्यग्निकरणम्' वचन दिखाते हैं, एवं आगे दिखाये जानेवाले सिद्धान्तको प्रमाण मानते हैं.

कुछ दूसरे विद्वान् आगे दिखाये जानेवाले दोषोंसे डरते हुए चतुर्दशीमें श्राद्ध करनेकी व्यवस्थाको स्वीकार न कर श्राद्ध और दीपदानके क्रमको विपरीत स्वीकार करते हैं. जहां ग्राह्य तिथियां दो दिन रहती हों वहां कार्योंका पूर्वापर क्रम निभानेकेलिये चतुर्दशी अमावास्या और प्रतिपदा तीनोंकी मध्याह्नकालमें व्याप्ति स्वीकार कर उसमें प्रमाण रूपसे "आश्विने मासि भूतादितिथयः कीर्तितास्त्रयः" इन ज्योतिर्निबन्धके दो वचनोंको उद्धृत करते हैं. यदि ये तिथियां संगवकालसे पूर्व ही समाप्त हो तो पूर्वविद्धा ली जावें, यदि संगवकालके बाद समाप्त हो तो परविद्धा ली जावें. यदि अमावास्या दूसरे दिन अपराह्ण समय तक रहे तो दूसरे दिन अपराह्णमें श्राद्ध कर सांयकाल प्रतिपदामें दीपदान और उल्मुक करें, ऐसा स्वीकार करते हैं. इस प्रकार प्रतिपदामें दीपदानका विधान एवं 'प्रतिपद्यग्निकारणम्' वचनसे पहले प्रतिपदामें उल्मुक करनेका निषेध हो चुका है. इसलिये "रिक्तायुक्ते यदा दर्शे" यह उसका पुनः प्रतिप्रसवशास्त्र दिखाते हैं.

कोई विद्वान् "दीपदानादिकृत्येषु ग्राह्या मध्याह्नकालिका" इस वचनके 'दीपदानादि' पदमें अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि समास मानते हैं. अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि जहां होता है वहां समास-घटक शब्दोंसे बोधित विशेषणांश केवल अन्य पदार्थका ज्ञान करानेमें उपयुक्त होता है, अन्य पदार्थके स्वरूपमें प्रविष्ट नहीं होता है. जिससे सार यह निकलता है कि दीपदान जिनके आदिमें है ऐसे दीपदान भिन्न कार्योमें मध्याह्न कालकी व्याप्ति ग्राह्य है. परन्तु योग्य यह है कि 'दीपदानादिकृत्येषु' इस पदमें 'दीपदानात् आदिकृत्येषु' इस प्रकार पञ्चमी तत्पुरुष करना चाहिये, जिससे दीपदानसे पूर्व होनेवाले देवपूजा आदि कार्योमें ही मध्याह्नकालकी व्याप्ति ग्राह्य प्रमाणित हो. रात्रिमें होनेवाले दीपदान लक्ष्मीपूजन उल्मुक आदि कार्योमें मध्याह्नकालकी व्याप्ति ग्राह्य प्रमाणित न हो.

बहुत विद्वान् तो 'दर्शश्राद्धं विना' इत्यादि पूर्वोक्त शास्त्रको निर्मूल कहकर श्राद्ध उल्मुक दीपदान आदि विपरीत क्रमसे भी यदि किये जावें तो दोष नहीं मानते. दोनों प्रकारके अंगांगिभावका निरादर करते हैं. इतने पर भी कुछ तो न विपरीत क्रमका दूषक शास्त्र लिखते हैं, न अनुकूल क्रमका साधक शास्त्र लिखते हैं. प्रतिपदाके दिन उल्मुक करनेका जो निषेध शास्त्र है, उसको किसी एक विषयमें सावकाश बताते हैं. कोई इस उल्मुक निषेध शास्त्रको लिखते ही नहीं है. श्राद्ध उल्मुक, दीपदान आदि कार्योका पौर्वापर्यक्रम जब अमावस्या तिथि पूर्ण हो तब मानते हैं. एकदेशव्यापिनी अमावस्यामें इसे स्वीकार नहीं करते. बलिराजाकी पूजा पूर्वविद्धा प्रतिपदामें और नारीनीराजन मंगलमालिका परविद्धा प्रतिपदामें करना चाहिये. गोक्रीडामें चन्द्रदर्शन और द्वितीया वेधका निषेध है, इसलिये जब प्रतिपदा क्षीयमाणा हो या समा हो तो पूर्वविद्धा प्रतिपदा लेना, अन्यथा परविद्धा लेना ऐसा कई विद्वान कहते हैं.

कुछ ऐसा भी कहते हैं कि अमान्त आश्विन कृष्णमें तुला संक्रान्ति हो तो परविद्धा गोक्रीडामें लेनी चाहिये. चतुर्दशी अमावस्या और प्रतिपदा इन तीनोंमें तिथियोंके उत्सव एक साथ करें (संलग्नम् एमेतत् कर्तव्यम्) इस संलग्न शास्त्रका तात्पर्य कोई यह बताते हैं कि जब मलमास हो तब दीपोत्सव नहीं करना चाहिये, क्योंकि यहां एक साथ होना सम्भव नहीं है. दूसरे संलग्न शास्त्रका अर्थ यह बताते हैं कि चतुर्दशीसे प्रतिपदा तक तीनों दिन केवल दीपदान निरन्तर किया जावे.

सिद्धान्त निर्णय

इन उपर्युक्त मतोमेंसे क्या-क्या आदर करने योग्य है इसका उत्तर यह है कि जिससे दोष आदि उत्पन्न न हों, सब कर्तव्योंकी व्यवस्था अच्छी हो, शास्त्रीय वचनोंका स्वारस्य उपलब्ध हो ऐसे मतका आदर करना उचित है, जो आगे दिखाया जाता है.

श्राद्ध और दीपदान आदिके पूर्वापर भाव नष्ट होनेसे डर कर इनका परस्पर अङ्गाङ्गीभाव स्वीकार किया जाता है तो यह भी मानना चाहिये कि दीपदानका अङ्गस्वरूप पार्वणश्राद्ध दर्शश्राद्धसे (प्रतिमास अमावस्याके दिन किये जानेवाले श्राद्धसे) भिन्न है. इसके विधानमें भी "कृत्वा तु पार्वणं श्राद्धं दधिक्षीरधृतादिभिः" इस अंशसे श्राद्धके प्रधान साधन द्रव्य दहीं, दूध आदि बताये हैं.

अब यहां व्यवस्था इस प्रकार है : जब प्रतिपदा वर्धमाना हो और सार्धत्रियामा (साढेतीन प्रहर) दूसरे दिन न हो तो पहले दिन अमावस्याविद्धा प्रतिपदा लेनी चाहिये, क्योंकि ऐसी परिस्थितिमें गोपूजा और गोक्रीडामें अमावस्या श्रेष्ठ है. चतुर्दशी और अमावस्या का दीपदान बलिपूजा और इनके अङ्गभूत कर्म अपने-अपने समयमें क्रमसे किये जाते हैं. अभ्यङ्गस्नानमें प्रातःकालव्यापिनी तिथि "इषे भूते च दर्शे च कार्तिके प्रथमे दिने" इस विशेष वचनके अनुसार ली जाती है. इसलिये प्रतिपदा निमित्तक अभ्यङ्गस्नान अमावस्याविद्धा प्रतिपदामें न कर दूसरे दिन प्रातःकाल करना उचित है, प्रतिपदा भले सार्धत्रियामेंसे कम हो. इस अवस्थामें अभङ्गस्नानका बलिपूजा आदिके बाद होना एवं दीपोत्सवके तीन दिनोंसे बाहर हो जाना दूषित नहीं है जैसे कि नारीनीराजनका. नारीनीराजन देवीपूराणके "लभ्येत यदि वा प्रातः प्रतिपद्घटिकाद्वयम्" इत्यादि वचनोंके अनुसार सूर्योदयव्यापिनी अत्यल्प प्रतिपदामें भी किया जाता है. अमावस्याका श्राद्ध कभी-कभी दूसरे दिन होता है, कभी-कभी दोनों दिन होता है, यह पहले कह चुके हैं. तिथिवृद्धि होने पर "वृद्धौ ग्राह्या तथोत्तरा" आदि वचन जो पूर्वविद्धाका निषेध करते हैं, इसका भी

उत्तर हो चुका. क्योंकि "त्रियामिका" वचन तीन प्रहर साढेतीन प्रहरसे कम तिथिका मान होने पर पूर्व तिथि ही ग्रहण करनेकेलिये कहता है. यह खास अमावस्या और प्रतिपदा केलिये विशेष वचन है, इसलिये इससे पूर्व वचनका बाध हो जाता है. परन्तु कार्तिक शुक्लमें तुला संक्रान्तिका प्रवेश हो तो गोक्रीडामें, पूर्वाह्नमें वर्तमान अमावस्याके भागमें करना चाहिये. 'कार्तिके शुक्लपक्षे' इस ब्रह्मपुराणके वचनसे गोक्रीडामें अमावस्याका निषेध किया गया है. ऐसी परिस्थितिमें सायंकाल कर्णजागरण (कानके पास खटखट बजाकर गायोंको खेलाना) नहीं करना चाहिये. गोपूजाका तो ऐसी परिस्थितिमें भी निषेध नहीं है, इसलिये होती है. इसी प्रकार गोवर्धनपूजा अन्नकूट आदि भी होते हैं. इनका समय अमावस्या है यह आगे कहेंगे. जो वचन प्रतिपदामें गोवर्धनपूजा करनेकेलिये कहते हैं, उनका तात्पर्य केवल गोवर्धनपूजा है, गोवर्धन, गायें और ब्राह्मण इन तीनके उद्देश्यसे अन्नकूट किया जाता है. गायें इसके उद्देश्यके अन्तर्गत है. इसलिये गोपूजा भी इसके साथ होती है. जब अमावस्या प्रतिपदा पूरी रहे तब अन्नकूटमें प्रतिपदा ग्रहण करनेका तो कारण यह हैं कि "कृत्वैतत्सर्वमेवाहन् रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः" इस भविष्योत्तरके वचनमें गोपूजा गोक्रीडा आदि सब कार्य दिनमें पूरे कर फिर रातको बलिकी पूजा करनी चाहिये इस प्रकार बलिपूजासे पहले समीपसमयमें गोपूजा, गोक्रीडा आदि सब कार्य दिनमें पूरे कर फिर रातको बलिकी पूजा करनी चाहिये इस प्रकार बलिपूजासे पहले समीप समयमें गोपूजा करनेकेलिये कहा है और दीपोत्सवके बाद अन्नकूट करनेका शिष्टाचार है.

जब कि तिथिसाम्य हो और प्रतिपदा दूसरे दिन साढेतीन प्रहर रहती हो. तब अन्नकूटमें प्रतिपदा ग्रहण करने योग्य है. इसमें भी सब कार्य पहलेके अनुसार होते हैं. जब कि रहते हुए भी प्रतिपदा क्षीयमाणा हो तब अमावस्या विद्धा ही प्रतिपदा लेनी चाहिये. ऐसी स्थितिमें चतुर्दशी-अमावस्या दोनों, दोनों दिन प्रदोष समयमें न रहें तो दोनोंकी गौणकालमें व्याप्ति स्वीकार कर (पूर्वविद्धामें) कर्म करना चाहिये. इस पक्षमें भी सभी कार्य पूर्ववत् होते हैं. जब कि चतुर्दशी दोनों दिन प्रदोष समयमें न रहती हो और अमावस्यासे ही तिथियोंकी घटिकाओंकी कमी हो जाय, अमावस्या उसके उत्तर दिनमें तीन प्रहरसे पूर्व ही समाप्त हो जाती हो, प्रतिपदा साढेतीन प्रहरोंसे पूर्व समाप्त होती हों तब त्रयोदशीकी रात्रिमें चतुर्दशीका दीपदान करना चाहिये. क्योंकि प्रदोषोत्तर काल गौण प्रदोषमें चतुर्दशीकी सत्ता वहां है. इसके बाद प्रातःकाल चन्द्रोदय या सूर्योदयके समय चतुर्दशीमें अभ्यङ्ग करना चाहिये, फिर चतुर्दशीमें प्रदोषमें अमावस्याका दीपदान करना चाहिये. बादमें दूसरे दिन सूर्योदय व्यापिनी अमावस्यामें अन्नकूट आदि करना उचित है, इसी दिनकी रात्रिको प्रतिपदामें बलिपूजा आदि कार्य करने चाहिये. (इस पक्षमें प्रतिपदा निमित्तिक अभ्यङ्ग और नारीनीराजन दूसरे दिन प्रातःकाल) जब कि अमावस्या दो दिन प्रदोषकालव्यापिनी हो

परन्तु दूसरे दिन रात्रिमें एक घडी भर न रहती हो एवं आगे प्रतिपदा भी साढेतीन प्रहरसे कम हो तो पहली अमावस्यामें अमावस्याका दीपदान और दूसरी अमावस्यामें बलिपूजा अन्नकूट आदि करना चाहिये. यदि ऐसी प्रदोषद्वयव्यापिनी अमावस्या दूसरे दिनकी रात्रिमें भी घडीभर रहे तो अमावस्याका दीपदान दूसरी अमावस्यामें किया जावे, आगे प्रतिपदा क्षीयमाणा हो तथापि आपत्ति नहीं "दण्डैकरजनीयोगे" वचन यही कहता है. ऐसा न मानने पर "दण्डैकरजनीयोगे" वचनका बाध हो जाएगा. "इतोऽन्यथा" यह अमावस्या प्रदोषद्वयव्यापिनी न हो या दूसरे दिन रात्रिमें एक घडीसे कम रहती हो तब सावकाश है. यहां यह भी नहीं कह सकते कि रात्रिपूर्वभागमें केवल घडीभर रहनेवाली अमावस्याके दूसरे दिन रातको द्वितीया आ जायगी, इसलिये बलिपूजा न हो सकेगी. क्योंकि बलिपूजामें केवल चन्द्रदर्शनका निषेध है, द्वितीयाका निषेध नहीं है. "नन्दा किचिंद्युता" वचनमें चन्द्रदर्शनको ही दोषका कारण कहा है.

"प्रतिपदा जहां कुछ द्वितीया युक्त हो जावे तो बलिपूजा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वहां चन्द्रदर्शन होना सम्भव है".

इस 'दण्डैकरजनीयोगे' पक्षमें चतुर्दशीका दीपदान चतुर्दशीके प्रदोषमें रहनेवाली पहली अमावस्यामें होता है. ज्योतिर्निबन्धके "दीपदानादि कृत्येषु ग्राह्या मध्याह्नकालिका" इस वचनके अनुसार यहां मध्याह्न समयमें चतुर्दशीकी व्याप्ति ग्राह्य की जाती है. शेष सब यथास्थान होते हैं.

यदि अमावस्या पहले दिन प्रदोषकालव्यापिनी हो, दूसरे दिन रात्रिमें भी घडी भर रहती हो, उसके दूसरे दिन प्रतिपदा साढे तीन प्रहरसे कम हो या चन्द्रदर्शनकी पूरी सम्भावना हो या तुला संक्रान्तिका प्रवेश कार्तिक कृष्णमें हो तो, बलिपूजा भी पहले दिन दूसरी अमावस्याकी रात्रिमें की जाती है और गोक्रीडा भी इसी रात्रिको प्रतिपदामें होती है. अर्थात् केवल कर्णजागरण होता है. अन्नकूट, गोवर्धन पूजा, गोपूजा आदि दूसरे दिन प्रतिपदा पूर्वाह्नमें होते हैं. श्रीमद्भागवतके "वयं गोवृत्तयो अनिशम् तस्मात् गगवां ब्राह्मणानाम् अद्रेश्चारभ्यतां मख:" इत्यादि वचनोंमें गोवर्धनका वर्णन करते हुए गायोंका उल्लेख सबसे प्रथम किया है, जिससे गोपूजाकी प्रधानता मालूम होती है. अतएव यह बलिपूजाकी अङ्गभूत नहीं है. जब कि स्कन्दसमुच्चयके "वर्धमान तिथौ नन्दा यदि सार्धत्रियामिका" इस वचनके अनुसार प्रतिपदा दूसरे दिन सार्धत्रियामा हो तब भी बलिपूजा पहले दिन अमावस्या विद्धा प्रतिपदामें होती है, और गोवर्धन अन्नकूट गोपूजा दूसरे दिन शुद्ध प्रतिपदामें होते हैं.

अन्नकूटोत्सवका विधान कहां है?

पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें अन्नकूटोत्सवका विधान इस प्रकार है :

"बलि राजाके घरके द्वार पर गोमयका बडा गोवर्धन स्थापित किया जावे. भगवान् गोपालकी स्थापना करे और प्रार्थना करे कि 'हे गोवर्धन सहित भगवन् गोपाल! अपनी वाणीका पालन करनेकेलिये आप बलि राजाके द्वारपाल बने हैं'. फिर भक्ति पूर्वक भगवानकी प्रतिष्ठा कर पूजन करें. अन्तमें इस प्रकार प्रार्थना करें 'हे विश्वके स्वामी, गोवर्धनको छत्र बनानेवाले, इन्द्रोत्सवके नाशक, गायोंके रक्षक गोपालजी! मेरी पूजा ग्रहण कीजिये. हे पृथ्वीके धारण करनेवाले, गायोंके रक्षक, भगवानकी भुजाओके सहारे छाया करनेवाले गोवर्धन! तुमने करोडो गायें हमें दी'. इस प्रकार यथाविधि पूजन कर सुन्दर भक्ष्य भोज्य पदार्थोंसे भाई बन्धु सम्बन्धी एवं अन्य मनुष्योंको क्रमशः भोजन करावें. अन्तःपुरमें (जनानखानेमें) रहनेवाला स्त्रीवर्ग, सेवकवर्ग अपने लिये हितकारक हो वैसा भोजन करे. वस्त्र, केशर, चन्दन, पुष्प, पान, इलायची, लवंग, कपूर, कस्तूरी इन वस्तुओंसे सबका सन्मान करे. यह सब कार्य कर भगवानकी भक्तिके साथ सुन्दर अन्नकूट महोत्सव करे".

वराहपुराण और मथुरा माहात्म्यमें अन्नकूटका निर्वचन इस प्रकार है :

"अन्नकूट नामक पर्वतके पास भगवान् श्रीकृष्णका बनाया हुआ एक तीर्थ है. वहां भगवान् श्रीकृष्णने अपने माहात्म्यके प्रचारार्थ इन्द्रकी प्रीतिकेलिये करनेवाला बडा यज्ञ रोक दिया. इन्द्रने आक्रमण किया. भगवानने मदभङ्गके बाद भक्ष्य भोज्योंसे इन्द्रका संतोष किया और इन्द्रके साथ बात की. इन्द्रके द्वारा की गई जलवृष्टिसे पीडित गायोंकी रक्षाकेलिये भगवानने हाथमें उठाकर गिरिवर धारन किया. इन्द्रके द्वारा पूजित वह पर्वत अन्नकूट कहा गया".

यद्यपि गोवर्धनोत्सव अन्नकूटोत्सवके अङ्गरूपसे किया जाता है, परन्तु व्रतदिनकर ग्रन्थमें अन्य मासमें भी गोवर्धनोत्सव करनेका विधान है, जो इस प्रकार है :

"गोवर्धनमें नन्दरायजीने श्रावणकी अमावास्याके दिन यह उत्सव किया था. गोपोंने इसे बहुत बढाया. इसके आगे भगवान् नन्दरायजीसे कहते हैं कि दर्शेष्टिको देवताओंमें इन्द्र, महेन्द्र, विमृध ये नाम वेदने बताये हैं, इनमें हम शक्र (नामप्रयोजक)को कैसे समझें. वेदोमें गुणविभागसे देवताभेद माना जाता है. (तात्पर्य यह कि दर्शेष्टिका देव शक्र नहीं, इसके नामसे यह दर्शेष्टियाग कैसे किया जाता है). अतएव यहां गोवर्धनोत्सव करना चाहिये".

इन वचनोंसे मालूम होता है कि गोर्धनोत्सव दर्शेष्टिकालमें अमावस्या प्रतिपदाकी सन्धिमें 'अपर्तावुल्बणं वर्षम्' इत्यादि वचनविरुद्ध ऋतुमें इन्द्रको पर्जन्य वृष्टि होनेका उल्लेख करते हैं. हरिवंशमें इस घटनाका समय कण्ठतः शरद्ऋतु बताया है. शिष्टाचारसे भी इस समय शरद्ऋतु ही गोवर्धनोत्सवकेलिये मुख्य मालूम होती है. भगवद्भक्त भगवानके

वचनोंके अनुसार ही कार्य करते हैं, न कि बलिपूजाके अङ्गरूपसे, इसलिये बलिपूजाके बिना भी गोर्धनोत्सव करना योग्य है.

अमावस्याके दिन इस उत्सवके करने की सुविधा न हो तो द्वादशीपर्यन्त शिष्ट लोग करते हैं, यह भी योग्य ही है. क्योंकि इन्द्रयागकी सामग्रीका गोवर्धनोत्सवमें उपयोग किया था. जो इन्द्रयाग अमावस्यामें होता था, इस संगतिको दिखानेके लिये उपर्युक्त वचनोंमें अमावास्याका उल्लेख किया गया है. यदि अमावस्याका उल्लेख न होता तो इन्द्रयागकी संगति नहीं मिलती. अमावास्याका उल्लेख अमावस्यामें ही गोर्धनोत्सव करना चाहिये इस आशयसे नहीं है. विशिष्ट तिथिका आग्रह न होने से प्रतिपदा भी कहदी है. इस प्रकार पूर्वोक्त सभी निर्दोष है.

चतुर्दशी निर्णय:

पूर्वोक्त ग्रन्थका संक्षिप्त सार यह है : नरक चतुर्दशी अभ्यङ्ग स्नानमें पिछली रातको चन्द्रोदयके समय रहनेवाली और शेष दीपदान आदि कार्योमें प्रदोषव्यापिनी ली जाती है. दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी हो तो अभ्यङ्गस्नान पहले दिनकी पिछली रातको और दीपदान आदि दूसरे दिन प्रदोषमें, यदि दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी न हो तो पहले दिन सायंकाल दीपदान और पिछली रातको चन्द्रोदयके समय अभ्यङ्ग होगा. चतुर्दशी पहले दिन चन्द्रोदयसे प्रवृत्त हुई हो तो सब कार्य पहले दिन और दूसरे दिन हुई हो तो दूसरे दिन. चतुर्दशी किसी भी दिन चन्द्रोदयव्यपिनी न हो तो चन्द्रोदयव्यापिनी त्रयोदशीमें अभ्यङ्गस्नान और प्रदोषव्यापिनी चतुर्दशीमें दीपदान हो.

दीपावलि:

जिस दिन अमावस्या प्रदोषव्यापिनी हो उस दिन दीपावली की जाती है. यदि दो दिन प्रदोषव्यापिनी हो तो दूसरे दिन. पूर्ण प्रदोषव्यापिनी न होकर प्रदोषमें एक घडी भी दूसरे दिन रहती हो तो दूसरे दिन. किसी भी दिन प्रदोषव्यापिनी न हो परन्तु दूसरे दिन त्रियामा और वर्धमाना हो तो दूसरे दिन, अन्यथा पूर्वदिन. सूर्यास्तसे छः घडी तक प्रदोष है.

अन्नकूटोत्सव:

यह दीपावलिके दूसरे दिन किया जाता है. उस दिन अमावस्या हो चाहे प्रतिपदा. यदि अमावास्या हो और तुला संक्रान्ति कार्तिक शुक्लमें प्रारम्भ होती हो. इसके साथ केवल गोपूजाकी जावें, गोक्रीडा करना उचित नहीं. प्रतिपदाके दिन चन्द्रदर्शन होना सम्भव हो या तुला संक्रान्तिका प्रवेश कार्तिक कृष्णमें हो तो गोक्रीडा दीपावलिकी रात्रिमें और गोपूजन

अन्नकूट आदि शेष कार्यप्रतिपदाके दिन. यदि किसी कारणवश दीपावलीके दूसरे दिन अन्नकूटोत्सव न हो सके कार्तिक शुक्ल द्वादशी पर्यन्त किसी भी तिथिमें हो सकता है. दीपोत्सवका निर्णय पूर्ण हुआ.

भ्रातृद्वितीया :

कार्तिक शुक्ल द्वितीया भ्रातृद्वितीया (भाईदूज) है. यह भोजन कालव्यापिनी लेनी चाहिये. यद्यपि यह भोजन यमराजकी प्रीति सम्पादन करनेकेलिये है. यमकी पितरोंमें गणना होनेसे यमकी अपराह्णमें पूजाकी जाती है, इसलिये अपराह्ण व्यापिनी द्वितीया ग्रहण करना योग्य है. सब विद्वानोंकी भी इसमें सम्मति है. परन्तु "देवत्वं च पितृत्वं च यमस्यास्ति द्विरूपता" यह वचन यमको देवरूप और पितृरूप दोनों प्रकारका बताता है, केवल पितृरूप नहीं कहता. और "आवर्तनात्तु पूर्वाह्णः" इस वचनके अनुसार जब दिनके पूर्वाह्ण अपराह्ण दो भाग माने जाते हैं तो भोजनके समय अपराह्णका रहना सम्भव भी है. अथवा यों भी कह सकते हैं कि यमपूजा नहीं की जाती है, इसलिये अपराह्ण आवश्यक नहीं है. पूर्वाह्ण व्यापिनी द्वितीया लें.

गोपाष्टमी :

कार्तिक शुक्ल अष्टमी गोपाष्टमी है. इसके विषयमें पद्मपुराणका वचन व्रतदिनकरमें इस प्रकार है :

"कार्तिक शुक्ल अष्टमीको विद्वानोंने गोपाष्टमी कहा है. इस दिन भगवान् श्रीकृष्ण गायोंके ग्वाल बने थे. इससे पहले बछडे चराया करते थे. अतएव इस दिन गायोंकी पूजा करनी चाहिये, गायोंको भोजन देना चाहिये, गायोंकी प्रदक्षिणा और अनुगमन (पीछे चलना) करना चाहिये, जिससे कि सब कामनाओं की सिद्धि हो. यह गोपाष्टमी सूर्योदय व्यापिनी ली जाती है. जब सप्तमीविद्धा होकर क्षय हो जाय तो विद्धा ही ली जाती है, क्योंकि और कोई गति नहीं".

प्रबोधोत्सव :

कार्तिक शुक्ल एकादशीके दिन प्रबोधोत्सव होता है. भगवानके उत्थापनकी विधि हेमाद्रिमें उद्धृत ब्रह्मपुराणके "एकादश्यां तु शुक्लायां" इत्यादि वचनोंमें इस प्रकार है :

"कार्तिक शुक्ल एकादशीकी रात्रिमें सोते हुए भगवानको भक्त श्रद्धा-भक्तिसे युक्त होकर नृत्य-गीत-वाद्य, ऋग्-यजुस्सासाम वेदके माङ्गलिक मन्त्रोंसे, वीणा-नगारोंके शब्द और पुराणोंके पाठसे जागृत करें".

"हे युधिष्ठिर! कार्तिक शुक्ल एकादशीको रात्रिमें द्विज इस मन्त्रसे भगवानका उत्थापन करें : "ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अग्नि, कुबेर, सूर्य, सोम आदि देवोंसे वन्दित, सबके वन्दना करने योग्य, जगतके आधार हे देवाधिदेव! आप मन्त्रके प्रभावसे सुखपूर्वक जागृत हो जाईए. आप शेषशायीने सब प्राणियोंके हितकेलिये यह द्वादशी अपने जागरणके निमित्त नियत की है. आपके सोने पर यह सब जगत् सो जाता है और आपके जागने पर यह सब जगत् चेष्टा करने लगता है. हे लक्ष्मीपते! आप उठिये-उठिये".(भविष्योत्तर पुराण)

"आषाढ, भाद्रपद और कार्तिक मासोंमें क्रमश: अनुराधा श्रवण रेवती नक्षत्रोंके आदि मध्य और अक्त्य भागोंमें भगवानके शयन पार्श्वपरिवर्तन और जागरण के उत्सव करें". (भविष्योत्तरपुराण)

शयन रात्रिमें, पार्श्वपरिवर्तन सायंकालमें और जागरण दिनमें करना उचित है. नक्षत्रोंके आदि मध्य, अक्त्य भाग उक्त समयमें न मिलें तो ये कार्य केवल द्वादशीमें ही किये जावें.

"इन्द्रियोंका संयम रखता हुआ प्रबोधिनी एकादशीमें जागरण करें. गुरुकेलिये एक गोमिथुन भेट कर द्वादशीके दिन ब्राह्मणोंको भोजन करावें, सायंकाल पर्यन्त सारा दिन पुराण आदि पवित्र ग्रन्थोंके पाठसे व्यतीत करें. फिर सूर्यास्त होने पर स्नान कर यथाशास्त्र वृन्दावनमें भावनासे चोकोर मण्डप बनावें. उस मण्डपको पुष्प, मालाएं, नारियल, सुपारियां आदि सुन्दर-सुन्दर फल, पौंडे और केलके स्तम्भोंसे सुशोभित करें. वहां भगवानकी सुन्दर मन्त्रघोषके साथ प्रतिष्ठा करें. बादमें "इदं विष्णु" और वराहपुराणोक्त मन्त्रोंसे भगवानका जागरण करें". (स्कन्दपुराण चातुर्मास्यव्रतकल्प)

स्कन्दपुराण पुरुषोत्तम माहात्म्यमें भगवानके जागरणके बाद पञ्चामृत स्नान करानेका विधान है.

"सुन्दर गन्धवाले तैलसे अभ्यङ्गकर पञ्चामृत नारियलोंका जल एवं अन्य फलोंके रससे भगवानको स्नान करावे".

उपर्युक्त द्विविध वाक्योंके अनुसार प्रबोधोत्सवकेलिये एकादशी और द्वादशी दोनों तिथियां है. शयन, जागरण और पार्श्वपरिवर्तन केलिये क्रमश: रात्रि दिन और सायंकाल समय है ऐसा अनेक विद्वानोंका मत है.

परन्तु मुझे ऐसा मालूम होता है कि उपर्युक्त वचानोमें 'द्वादशी' शब्दका अर्थ एकादशी है, क्योंकि भविष्योत्तरपुराणमें "कार्तिक शुक्ल पक्षे तु एकादश्यां पृथासुत" यह वचन पहेले तो एकादशीमें भगवानके जागरणका उल्लेख करता है, इसलिये इसके बाद "इयं च द्वादशी देव प्रबोधार्थं विनिर्मिता" यह द्वादशीका उल्लेख पूर्वविरुद्ध नहीं हो सकता. (प्रथमोपजातबुद्धिर्बलीयसी) यहां 'द्वादशी' शब्दका अर्थ एकादशी है. 'द्वादशी' शब्द एकादशीका बोध करता है, यह हमें पवित्रोत्सवके प्रसङ्गमें स्पष्ट करना है. 'ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्नि' इत्यादि दो मन्त्र यदि वराहपुराणके हों और द्वादशीके प्रकरणमें पठित हों तो एकादशी द्वादशी दोनों तिथियां प्रबोधोत्सवका काल रहे, कोई हानि नहीं है. भविष्योत्तरके वचनके अनुसार रात्रि और स्कन्दवचनोंके अनुसार दोनों दिन भी प्रबोधकाल है. इसमें विशेषता यह है कि एकादशीमें उत्थापन किया जावे तो दशमी विद्धा एकादशीका त्याग करना चाहिये. क्योंकि दशमीसे विद्धा आसुरी है 'युग्माग्नियुगभूतानि' इस युग्म वचनके अनुसार भी द्वादशीविद्धा एकादशी ग्राह्य है, दशमीविद्धा ग्राह्य नहीं है. एकादशीके उत्तरार्थमें रहनेवाली भद्राका (भद्रा नामक करणका) भी त्याग करना आवश्यक है, क्योंकी दूसरा शुद्ध समय उपलब्ध होता है. द्वादशीमें प्रबोधोत्सव किया जाय तो रेवतीके अन्तिम चरणका सम्बन्ध कर्मकालमें विशेष आवश्यक नहीं. नक्षत्र न रहने पर केवल द्वादशीमें उत्सव करें. ऐसा "द्वादृश्यां संधिसमये" यह वराहवचन कहता है.

अब वहां प्रसङ्गवश वेधका विचार किया जाता है : "हरिवल्लभसुधोदय" आदि ग्रन्थोंमे स्थूल रूपसे वेध चार प्रकारका कहा है, जिसका निरूपण विष्णुधर्मोत्तरमें इस प्रकार है :

"पेंतालीस घटिकाओंसे (पेंतालीस पूर्ण होने पर) स्पर्श, पचाससे सङ्ग, पचपनसे शल्य और छप्पनसे वेध प्रारम्भ होता है. 'स्पर्शे तु' वचन : "46से 50 तक पांच घडियोंका स्पर्श है. 51 से 55 तक पांच घडियोंका संग है. 56 से 60 तक पांच घडियो शल्य और वेध है". (प्रारम्भमें एक घडी शल्य और बादमें चार घडी वेध है). यह वेध स्पर्श आदि भेदोंसे चार प्रकारका है. वैष्णव स्पर्श आदि चारों भेदोंका त्याग करें".

विष्णुधर्मोत्तरमें इन चारोंकी व्यवस्था इस प्रकार बताई है :

“स्पर्श आदि चार वेध सत्ययुगमें प्रचलित थे, सङ्ग आदि तीन वेध त्रेतामें प्रचलित थे, शल्य और वेध ये दो वेध द्वापरमें प्रचलित थे और कलियुगमें एक वेध ही प्रचलित है. अतएव इस समय वैष्णवोंको वेदका ही त्याग करना चाहिये”.

वेधका स्वरूप श्रीमदाचार्यचरणोंने तत्त्वदीपनिबन्धमें बताया है

“एकादशीका व्रत 56 घडियोंके वेधसे रहित करना चाहिये. पहले और प्रकारसे करने पर भी भगवन्मार्गमें प्रवेश करनेके अनन्तर 55 घडी दशमी हो तब एकादशीका व्रत त्याग करना चाहिये”.

यहां आशय है

“56 घटिकाएं व्यतीत होने पर प्रात:काल प्रारम्भ होता है. एक घडी और अधिक व्यतीत हो तो अरुणोदय प्रारम्भ होता है. 58 घडियां व्यतीत होने अधिक व्यतीत हो तो अरुणोदय प्रारम्भ होता है. 58 घडियां व्यतीत होने उष:काल प्रारम्भ और 59 घडियां व्यतीत होने पर सूर्योदय प्रारम्भ होता है”.

इस वचनमें उनसठ घडियोंके बाद पारिभाषिक सूर्योदय कहा है. ‘उदयात्प्राक्’ यह वचन उदयसे पहले चार घडी इतने समयको अरुणोदय बताता है. यह यदि इस पक्षमें 55 घडी दशमीसे अरुणोदय वेध बनता है. इस पाक्षिक दोषका भी परिहार होना चाहिये. इस आशयसे 55 वेध कहा है. किसीने जो यह कहा कि “उष:कालोऽष्टपञ्चाशत्” इस वचनमें 58 वी घडी उष:काल कहा है, इसलिये शेष रही दो घडियां पारिभाषिक सूर्योदय काल साबित होता है, परन्तु यह कथन अज्ञानमूलक है, क्योंकि ‘अष्टपञ्चाशत्’ शब्द पूरण प्रत्ययान्त नहीं है, इसलिये 58 वीं घडीका उष:काल होना प्रमाणित नहीं होता. इसका आशय तो यह है कि जब 58 घडियां व्यतीत होती हैं तब उष:काल प्रारम्भ होता है. इसी प्रकार आगे समझना. और यही योग्य भी है. 56 घडीयोंके बाद 4 घडियां शेष रहती है और प्रात:, अरुण, उषा और सूर्योदय ये काल भी चार हैं. यह भी नहीं कह सकतें कि ‘उदयात् प्राक्’ इस वचनमें परिभाषिक सूर्योदयसे अरुणोदय माननेमें कोई प्रमाण नहीं है, क्योंकि ढाई या तीन घडी रात शेष रहते प्रत्यक्ष अरुणोदय उपलब्ध होता है, इसलिये चार घडी रात रहते जो अरुणोदय कहा है यह पारिभाषिक ही है, इसलिये चार घडी रात रहते जो अरुणोदय कहा है यह पारिभाषिक ही हो सकता है और पारिभाषिक अरुणोदयमें सूर्योदय भी पारिभाषिक ही लेना उचित है. सर्वत्र मुख्य अरुणोदय सूर्योदयसे निर्वाह होता हो तब तो परिभाषाकी (कल्पना) उल्लेख ही व्यर्थ हो जाती है.

किसीने कहा कि प्रहर या अर्ध प्रहर की गणना सर्वत्र प्रत्यक्ष सूर्योदयसे की जाती है ऐसा देखा गया है और हेमाद्रि स्थित "निशि प्रान्ते" इस स्मृतिवचनमें रात्रिके अन्तिम अर्धप्रहरको अरुणोदय कहा है, यह अर्धप्रहर पारिभाषिक सूर्योदय तक है, ऐसी प्रतीति होती नहीं है. अतएव अरुणोदय पारिभाषिक सूर्योदयके प्रारम्भ तक मानना अयोग्य है. यह कथन हमें तो अनुचित मालूम होता है, क्योंकि प्रहर अर्धप्रहर आदिकी गणना सर्वत्र सूर्योदयसे है यह नियम नहीं है. "सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात् पूर्वयामचतुष्टयम्" इस वचनमें सूर्यग्रहण जिस प्रहरमें हो उससे पूर्व चार प्रहरोंमें भोजन करनेका निषेध है. ऐसे स्थलोमें सूर्योदयसे प्रहरकी गणना नहीं की गई. इससे मालूम होता है कि प्रहर वगैरहकी गणनामें किसी भी अवधिकी अपेक्षा है, सूर्योदयका नियम नहीं है. अतएव "निशि प्रान्ते" इस स्मृतिवचनमें भी पारिभाषिक सूर्योदयसे यामार्ध गिना जा सकता है इसका वारण नहीं हो सकता.

"चतस्रो घटिका: प्रातररुणोदयनिश्चय:" इस ब्रह्मवैवर्तपुराणके वचनमें प्रात:कालके चार घडी समयको अरुणोदय कहा है, जिसका कि "नाडिका: षट्पञ्चाशत्" इस वचनमें प्रात:कालके रूपमें उल्लेख है. अतएव पारिभाषिक सूर्योदयसे अरुणोदयका मान लेना योग्य नहीं, क्योंकि प्रात:कालसे अभिन्न प्रमाणित हुआ अरुणोदय साक्षात् सूर्योदयसे और "उदयात्प्राक्" इस वचनका कहा अरुणोदय पारिभाषिक सूर्योदयसे इस प्रकार अरुणोदयकी दो अवधियां कल्पना करनेमें गौरव है. जहां तक एक मूलकी कल्पना सम्भव हो, दोकी कल्पना न्यायोचित नहीं है. इसी न्यायको लक्ष्यमें रखकर अन्य ग्रन्थकारोंने प्रात:कालका मान चार दण्ड या दो मुहूर्त बतानेवाले वचनोंको अर्धप्रहर उपलक्षक माना है.

इसका निराकरण यह है कि "नाडिका षट् च पञ्चाशत् प्रातस्त्वेकोऽधिकोरुण:" इस वचनमें ही 'एकोऽधिकोरुण:' इस अंशसे अरुणोदयका मान तीन घडी बताया है. इस प्रकार अरुणोदयके भिन्न-भिन्न मानोंका उल्लेख है. यहां एक मूल की कल्पना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है. प्रात:कालिक मान बतानेवाले 'चतुर्दण्ड' और 'द्विमुहूर्त' शब्दोंको उपलक्षक मानना भी ठीक नहीं है. एक ओर 'द्विमुहूर्त' 'चतुर्दण्ड' आदि शब्द हैं, दूसरी ओर 'यामार्ध' शब्द है. इन दोनोंमेंसे एक मुख्यार्थक सिद्ध हो तब उसके अनुरोधसे दूसरेको उपलक्षक मान सकते हैं. इनमें परस्पर साध्यसाधकभाव मान लेने पर तो चक्रकदोष आ जाता है. अतएव दो मूलोंकी कल्पना यदि प्रमाणसिद्ध हो तो ऐसा गौरव दूषित नहीं है. "स्पर्शे तु घटिका: पञ्च" इस वचनमें जो स्पर्शादि वेधोंका उल्लेख किया है. इसका तात्पर्य अरुणोदय वेधकी निन्दा करना है यह कथन भी निराधार ही है.

माधवाचार्यने 'अर्धरात्रेऽपि' वचनका उपन्यास कर यह कहा कि "अर्धरात्रि व्यतीत होने पर यदि दशमीका वेध हो तो वह त्याज्य है ऐसा कुछ आचार्य चाहतें हैं". अरुणोदयके समय वेध माननेमें तो शमाको अवकाश नहीं है. हरिप्रिय आचार्योंने जो कपाल वेध (अर्धरात्रिका वेध) कहा है वह मुझे अभीष्ट नहीं है. क्योंकि रात्रि तीन प्रहरोंकी मानी जाती है. तात्पर्य यह कि रात्रिके चौथे प्रहरका उत्तरार्ध दिनका अंश है. इसमें ही वर्तमान दशमी दिनको विद्ध कर सकती है. इस कपाल वेधका तात्पर्य, जब कि अर्धरात्रिके समीपका वेध ही निन्दित है तो अरुणोदय समयके वेधका क्या कहना? इस प्रकार कैमुतिक न्यायसे अरुणोदय वेधकी निन्दा बतानेमें है. इस माधवोक्त रीतिके अनुसार विचार करने पर भी अरुणोदय वेध सर्वथा त्याग करने योग्य साबित होता है. अतएव इसका समय निश्चित करना आवश्यक है. इसके लिये सूक्ष्मदृष्टिपण्डितोंको हमारे बताये हुए मार्गका आदर करना ही चाहिये. उपर्युक्त शौनकवाक्यमें त्रिप्रहरात्मक रात्रिस्वरूपका कारणरूपसे उल्लेख कर सूक्ष्मदृष्टिसे यह सूचित किया है कि रात्रिके पूर्वभागका प्रारम्भिक अर्धप्रहर पूर्व दिनकी पश्चिम सक्ध्याके अन्तर्गत है और रात्रिके उत्तर भागका अन्तिम अर्धप्रहर दूसरे दिनकी पूर्व सक्ध्याके अन्तर्गत है.

इससे कोई यह शंका न करे कि हरिप्रिय आचार्य स्थूलदृष्टि थे. क्योंकि जब उत्तरायण होता है तब देवोंकी रात्रिका उत्तरार्ध प्रारम्भ होता है. इसमें सूर्यके आने पर (मकर संक्रान्ति लगने पर) सभी देवसम्बन्धी शुभकार्य होते देखे गये हैं. अतएव प्रतिदिन रात्रिके उत्तरार्धमें सूर्यके उदय कपालमें आने पर सभी देव सम्बन्धी शुभ कार्य करना उचित है. इस उत्तरार्धमें वेध होने पर दैत्योंका बल बढ जाना सम्भव है. इसलिये हरिप्रिय आचार्योनें सूक्ष्म दृष्टिसे इसका विचार कर त्याग स्वीकार किया है. परन्तु इस समय युग असुरोंका है और विष्णुधर्मोत्तर ग्रन्थका "स्पर्शादिचतुरो वेधा:" यह वचन कलियुगमें केवल पारिभाषिक अरुणोदय वेधको ही त्याज्य कहता है, इस आशयसे कपाल वेधमें अपनी असम्मति प्रदर्शित की है. इसलिये युगभेदसे दोनोंका स्वीकार करना निर्दोष है.

कुछ विद्वानोंने "अर्धरात्रे तु केषांचित् दशम्या वेध इष्यते" इस वचनके द्वारा बोधित कपाल वेधका तात्पर्य यह दिखाया कि 'दशम्या: सङ्गदोषेण' इस नारदीय वचनमें अर्धरात्रिके बाद दशमीका वेध रहने पर पूर्वके चार प्रहर विष्णुपूजन और संकल्पमें वर्जित किये हैं, जिसका विशेष स्पष्टीकरण 'विद्धोपवासे' वचनमें यह है कि "विद्धाका उपवास यदि भूलसे कर लेवे तो उपवासके साथ सम्पूर्ण दिन व्यतीत कर रात्रिमें एकाग्रचित होकर विष्णुपूजन और व्रतसंकल्प करे". यानि कपाल वेध होने पर दिनके चार प्रहर विष्णुपूजन और व्रतसंकल्पमें वर्जित करे. परन्तु यह मत भी अच्छा नहीं है, क्योंकि उपर्युक्त वाक्यमें

‘दशम्या: सङ्गदोषेण’ यह ‘सङ्ग’ वेधका उल्लेख नहीं है. और इस प्रकार संकल्पका निषेध करने पर व्रतका आरम्भ नहीं होगा, क्योंकि “संकल्पो व्रतसत्रयो:” इस शास्त्रके अनुसार व्रतका प्रारम्भ संकल्पसे ही माना जाता है, व्रतका आरम्भ न होने पर तो व्रत विरुद्ध चेष्टाएं भी उस समयमें हो सकेंगी.

कुछ पंडितोंने जो यह कहा कि “उदयात् प्राक् चतस्रस्तु नाडिका अरुणोदय:” इस वचनमें ‘उदय’ शब्दसे पारिभाषिक सूर्योदय लिया जायगा तो “निशि प्रान्ते तु यामार्धे” इस दूसरे अरुणोदय लक्षणमें उल्लिखित यामार्धकी समाप्त भी इसे पारिभाषिक सूर्योदय पर माननी होगी. इसलिये प्रत्यक्ष सूर्योदय तकके एक घडीका सन्निवेश रात्रि और दिन किसीमें भी नहीं हुआ यह कैसे?

उत्तर : जैसे ‘प्रदोष’ शब्दवाच्य सक्ध्याकाल रात्रिका मुख है, इसी प्रकार यह प्रात:काल दिनका मुख है. इसलिये इसका अन्तर्भाव दिनमें हो सकता है. अथवा तीन प्रहरोंकी रात्रि माननेके पक्षमें अन्तिम अर्ध प्रहरका अन्तर्भाव जैसे रात्रिमें किया जाता है इस प्रकार इस प्रत्यक्ष सूर्योदय तककी एक घडीका अन्तर्भाव रात्रिमें हो सकता है. और उदय शब्दसे प्रत्यक्ष सूर्योदय ग्रहण करने पर भी मदनरत्नके “आदित्योदयवेलाया: प्राङ् मुहूर्तद्वयान्विता” इस वचनमें अरुणोदयका मान दो मुहूर्त बताया है, दूसरा मुहूर्त कच्ची दो घडियोंका होता है, यह “लघूनि वै समाम्नाता दशपञ्च च नाडिका: ते द्वे मुहूर्त” इस भागवत तृतीय स्कन्धीय वचनमें कहा है. इसलिये अरुणोदय चार घडियोंका मानना योग्य है, अर्ध प्रहरका मानना योग्य नहीं. रात्रिमानके अनुसार प्रहर घटता-बढता रहता है, सर्वदा समानरूपमें नियमित नहीं है. अतएव अर्धप्रहरका मानना चतुर्घटिकात्मक बतानेवाले वाक्यसे विरुद्ध है. “निशि प्रान्ते तु यामार्धे” इत्यादि वचन जो कि अरुणोदयका मान अर्धप्रहर बताते हैं, इनका तात्पर्य इनसे प्रतिपादित कर्मोमें उपयुक्त हानेवाले अरुणोदयका मान बतानेमें है. एवं दो मुहूर्तोका अरुणोदयमान बतानेवाले ‘आदित्योदयवेलाया:’ इत्यादि वचन एकादशीके प्रकरणमें हैं. इसलिये एकादशीव्रतमें तो प्रकरणवश इनका ही आदर करना योग्य है.

पन्द्रह मुहूर्तोका दिन और पन्द्रह मुहूर्तोकी ही रात्रि इस पक्षमें भी पारिभाषिक सूर्योदय तक अरुणोदयकालकि अवधि है या प्रत्यक्ष सूर्योदय तक? इस प्रकार अवधिमें विवाद है, अरुणोदयके मानमें विवाद नहीं, पारिभाषिक सूर्योदय तक की अवधि तो शास्त्रवचनोंसे सिद्ध है, इसलिये निषेध करना योग्य नहीं है.

और “अरुणोदय वेलायां दशागन्धो भवेत् यदि” इस वचनमें अरुणोदयके साथ अवसरपर्याय ‘वेला’ शब्दका प्रयोग किया है, एवं ‘अवसर’ शब्द प्रधान समयसे कुछ पूर्व समयमें व्यवहृत होता देखा गया है. ‘दशागन्ध’ शब्दसे दशमीके गन्धका त्याग बताया है और गन्ध स्वसम्बद्ध वस्तुके पास कुछ दूर तक रहता है. अतएव चतुर्घटितात्मक अरुणोदय प्रत्यक्ष सूर्यसे लिया जाय, तथापि वेला गन्ध शब्दोंके प्रयोगवश एक घटिका अधिक त्याग करना योग्य है.

“शल्ये पञ्च तथा वेधे” यह विष्णुधर्मात्तर वचन, शल्यवेधके पञ्च घटिकात्मक मानका अरुणोदयवेधमें भी अतिदेश करता है. और “षट्पञ्चाशता वेधः” इस वचनसे अरुणोदय वेधका मान चार घडियोंका प्रमाणित होता है. इस प्रकार अरुणोदय वेधका मान दो प्रकारका सिद्ध हुआ. अधिकार और शिष्टाचारके अनुसार दोनोंकी व्यवस्था करना उचित है.

इसके अतिरिक्त “कामविध्वंसिनी शल्या, विद्धा मोक्षविघातिनी” यह विष्णुधर्मवाक्य शल्य वेधवाली एकादशी इच्छित फलका नाश करती है, ऐसा कहता है. इसलिये एकादशी व्रतको काम्य माननेके पक्षमें शल्य वेधका भी त्याग करना योग्य ही है. यह गूढ आशय भी 55 घडी वेध माननेका है. साथ ही “विष्णुधर्मेषु सर्वेषु ग्राह्या आर्योद्भवा तिथिः” यह वचन ज्योतिषोक्त आर्यमतसे सिद्ध हुई तिथि ग्रहण करनेकेलिये कहता है, जिस आर्यमतसे सिद्ध हुई तिथियां प्रचलित सौरमतसे सिद्ध हुई तिथियोंकी अपेक्षा एक घडीके करीब अधिक अन्तरवाली होती है. 55 वेध माननेसे इस आर्यमतका भी संग्रह हो जाता है. “विवादेषु च सर्वेषु” “संदिग्धैकादशी यत्र” इत्यादि वचन विवाद या सन्देह उपस्थित होने पर द्वादशीमें व्रत करनेका विधान करते हैं. ये विवाद और सन्देह एक घडी अधिक त्याग करनेसे कुछ अंशमें दूर हो सकते हैं, इसलिये इन वचनोंका भी संग्रह हो गया. बीस दोषोंका संशोधन भी अन्य युगोंसे सम्बन्ध रखता है, इसका यहां विशेष वर्णन नहीं किया जाता है.

वेध न होने पर भी द्वादशीकी वृद्धि हो तो एकादशीका त्याग कहा है. वैसा होने पर जब उपवास हो तभी देवोत्थापन करना चाहिये. द्वादशीमें देवोत्थापनका विधान है. एकादशी त्यागके निमित्त शास्त्रोमें इस प्रकार कहे हैं : एकादशीकी वृद्धि होने पर

“पहले दिन एकादशी पूर्ण हो (अरुणोदयवेध-रहित हो) और दूसरे दिन द्वादशीमें कुछ घडी रहती हो तो द्वादशीमें उपवास और त्रयोदशीमें पारणा करें”.(नारद)

"एकादशी पहले दिन अरुणोदय वेध रहित हो और दूसरे दिन प्रातःकाल भी फिर रहे तो कामनावाला पहलीमें और निष्काम दूसरी एकादशीमें व्रत करें".(मार्कण्डेय)

द्वादशीकी वृद्धि होने पर

"एकादशी अरुणोदय वेधरहित हो और द्वादशी दो हो जावें तो द्वादशीमें उपवास करना चाहिये, क्योंकि तिथिवृद्धि श्रेष्ठ मानी जाती है".(गरुडपुराण)

"जब एकादशी अरुणोदय वेधरहित हो और द्वादशी दो हो जावें तो एकादशीका त्याग कर द्वादशीमें उपवास करें".(स्कन्दपुराण)

एकादशी और द्वादशी दोनोंके अधिक होने पर :

"एकादशी पहले दिन पूर्ण (अरुणोदय वेध रहित) होकर दूसरे दिन प्रातःकाल फिर हो और इसके अनन्तर दिनमें द्वादशी भी हो तो दूसरी एकादशीका व्रत करें".(भृगुवचन)

एकादशीके भेदोंका प्रसंगवश यहां विचार किया जाता है.

"पातिव्रत्य व्रत करनेवालोंको विष्णुपञ्चक व्रत करना आवश्यक है. गोविन्द, परमानन्द, माधव, मधुसूदनके सिवा और किसीका चिन्तन नहीं करता है वह पातिव्रत्य व्रत वाला है. श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीरामनवमी एकादशी, श्रीवामनद्वादशी और श्रीनृसिंहचतुर्दशी —इन पांच व्रतोंका नाम 'विष्णुपञ्चक' है. यह विष्णुपञ्चक सब पापोंका नाश करनेवाला है. यह नित्य, नैमित्तिक और काम्य तीन प्रकारका है".

इस प्रकार पातिव्रत्य व्रतके प्रसंगमें विष्णुपञ्चक व्रतका त्याग न करना कहा है. यद्यपि यहां नित्य, नैमित्तिक और काम्य तीनों विशेषण विष्णुपञ्चक व्रतके हैं, अर्थात् यह व्रत तीन प्रकारका है ऐसा मालूम होता है, परन्तु त्रिविधैकादशी व्रत कथाकी समाप्तिमें प्रकरणका उपसंहार करते हुए नित्य नैमित्तिक काम्य इन तिनों विशेषणोंका उपयोग केवल एकादशी व्रतके साथ किया है, न कि विष्णुपञ्चकान्तर्गत अन्य व्रतोंके साथ, जो कि इसमें स्पष्ट है :

"अरुणोदयके समय दशमीके वेधसे रहित एकादशीके व्रतको प्रावाहिक कहा है. यह नित्य है. अभया एकादशीका व्रत नैमित्तिक है. जया-विजया आदि आठ प्रकारकी एकादशीयोंका व्रत काम्य है".

उपर्युक्त वचनमें ‘प्रावाहिक’ पदका अर्थ अरुणोदयवेधरहित एकादशी है, ऐसा पूर्व ग्रन्थके देखनेसे मालूम होता है. क्योंकि पूर्व ग्रन्थमें अरुणोदय वेधको एकादशी व्रतमें दूषित बताकर “शुक्रेण मोहिताः सर्वे” इस वचनसे यह कहा कि

“शुक्राचार्यके द्वारा मोहित किये जीव विष्णुदेवताके एकादशीव्रतको दशमीके वेधसे युक्त करते हैं. मोक्ष चाहनेवाले जीवोंको यमदैवत्य दशमीसे विद्धा एकादशीका सर्वथा त्याग करना चाहिये”.

यह प्रावाहिक एकादशीके उपवासका व्रत एक दिनमें किया जाता है. अभया एकादशीका व्रत तीन दिनोंमें पूर्ण होता है. कहीं-कहीं उपर्युक्त वचनमें ‘अभयाव्रतम्’की जगह ‘उभयाव्रतम्’ पाठ मिलता है. यह अभया एकादशीका व्रत पूजा प्रधान है. उपर्युक्त ग्रन्थमें दशमी, एकादशी और द्वादशी इन तीनों दिनोंके नियम बताकर मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशीसे प्रारम्भ कर एक वर्ष पर्यन्त पूजा करनेका विधान किया है. उपसंहारमें “एवमेकादशीपूजाव्रतं कुर्वन्ति ये नगः” इस वचनसे यह कहा कि

“जो मनुष्य इस प्रकार एकादशी पूजा व्रत करते हैं उनको भगवान् विष्णु स्वयं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थ देते हैं”.

उपवास तो नित्य होनेसे अभया एकादशीके व्रतमें भी स्वयं सिद्ध है, फिर भी उल्लेख न होनेसे यह अभया एकादशीका अंग है ऐसा साबित नहीं होता है. जया-विजया आदि आठ प्रकारकी एकादशीयोंके व्रतमें उपवास और पूजा दोनों प्रधान है, क्योंकि प्रकरणमें दोनोंका स्वरूप भी वही बताया है.

त्रिस्पृशा :

त्रिस्पृशा वचनका तात्पर्य केवल 55 घडीके वेधका त्याग है. साथ ही प्रतिज्ञावाक्यका (षट्पञ्चाशद्धेवरहितं कर्तव्यम्) तात्पर्य व्यवहार प्रसिद्ध अरुणोदय वेधका त्याग कराना है. द्वादशीकी वृद्धि होने पर शुद्ध एकादशीके त्यागका समर्थन “अविद्धाऽपि विद्धा स्यात् परतो द्वादशी यदि” इस हेमाद्रि स्थित पद्मपुराणके वचनसे होता है. एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी तीनों एक अहोरात्रमें सम्मिलित हो वह त्रिस्पृशा है, ऐसा पहले कहा है, यही व्रतके योग्य है. यद्यपि प्रस्तुत वचनके “विद्धाप्यविद्धा विज्ञेया परतो द्वादशी न चेत्” इस पूर्वार्धमें यह कहा कि विद्धा एकादशीको भी अविद्धा समझाना यदि आगे द्वादशी न मिले, परन्तु इससे त्रिस्पृशा एकादशीमें विद्धा ग्राह्य है यह अर्थ करना उचित नहीं, क्योंकि पद्मपुराणमें गङ्गाके प्रश्नरूपमें ‘दशम्येएकादशी’ वचनसे यह कहा कि “दशमी, एकादशी एवं द्वादशी तीनों एक

अहोरात्रमें हो तो वह त्रिस्पृशा होती है या नहीं", इसके उत्तरमें प्राचीमाधवने "आसुरी त्रिस्पृशा देवि" वचनसे यह कहा कि

"हे देवि! तूने जो त्रिस्पृशा कही है वह आसुरी है, इसका यत्नसे त्याग करना चाहिये. जैसे कि धर्महीन स्वामीका त्याग किया जाता है".

कालमाधवने यह दशमीविद्धा त्रिस्पृशा स्मार्त पर है (स्मार्तोंकेलिये है) ऐसा स्वीकार किया है.

हेमाद्रि लिखित 'एकादशी द्वादशी च' वचनमें

"एकादशी, द्वादशी और रात्रिके पश्चिम भागमें त्रयोदशी तीनों मिश्रित होने पर तिथि सब पापोंका हरण करनेवाली शुभ कही गई है. इसमें उपवास करें जिससे विष्णु सायुज्यमुक्ति प्राप्त हो. इसमें किया गया उपवास मोक्षको देता है".

इस वचनमें पापक्षय और मोक्ष चाहनेवाले विष्णु भक्तोंकेलिये एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशी के मिश्रणसे बननेवाली ही त्रिस्पृशा ग्राह्य है एसी व्यवस्थाकी गई है.

यद्यपि कूर्मपुराणके "एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी" इस वचनमें कहा कि

"एकादशी, द्वादशी और रात्रिके पश्चिम भागमें त्रयोदशी हो तो पुत्र-पौत्रोंसे युक्त गृहस्थ उस दिन उपवास न करें. परन्तु यह निषेध फल चाहते हो उनके लिये है".

उक्त वाक्यके पूर्वाधका तात्पर्य भी इसी प्रकार समझना पक्षवर्द्धिनीका सामान्य स्वरूप तो पहले बता दिया है, परन्तु इसका सविस्तर उल्लेख कथाके उपसंहारमें किया है.

हरिवल्लभसुधोदयमें पद्मपुराण पक्षवर्द्धिनी कथा प्रसंगके "पौर्णमासी यदा" इत्यादि वचन

"जब कि शुक्ल पक्षमें पौर्णमासी और कृष्ण पक्षमें अमावास्याकी वृद्धि हो अर्थात् पहले दिन पूर्ण 60 घडी रहकर प्रतिपदाके दिन भी कुछ रहे वहां विद्वान् छः दिनोंका संशोधन कर द्वादशीका उपवास करें, जिससे कोटिकुलोंका उद्धार कर नरकसे स्वर्गमें जाता है. संशोध्य छः दिनोंमें अमावास्या या पौर्णमासीके पूर्णवृद्धि हो, एकादशी द्वादशी पूर्वापेक्षया वर्धमाना हो, और अष्टमी नवमी दशमी क्षीयमाणा हो, ऐसी दशामें एकादशीका त्याग कर द्वादशीका उपवास करें".

पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें श्रीकृष्णार्जुन संवादमें भगवानने पक्षवर्द्धिनीके ओर स्वरूप भी बताये हैं. ''पुरा चैवावसाने च'' इत्यादि वचन

''प्रतिपदासे नवमी पर्यन्त तिथियोंका मान समान हो, दशमीसे त्रयोदशी पर्यन्त चार तिथियां बढे, दशमी आध घडी एकादशी देढ घडी द्वादशी साढे तीन घडी और त्रयोदशी इससे भी अधिक बढे''.

इस प्रकार पक्षवर्द्धिनीके छः भेद हैं.

1.जहां अमावास्या या पौर्णमासी बढकर प्रतिपदाको स्पर्श करे और प्रतिपदासे द्वादशी तक तिथियां बढती रहें वह पहली पक्षवर्द्धिनी है.

2.अमावास्या या पौर्णमासी बढकर प्रतिपदाको स्पर्श करे और आगे अष्टमी नवमी दशमी क्षीयमाणा हो, एकादशी द्वादशी वर्धमाना हो, वह दूसरी पक्षवर्द्धिनी है.

3.प्रतिपदासे नवमी तक तिथियां समान रहे. दशमी आधी घडी, एकादशी डेढ घडी, द्वादशी साढे तीन घडी और त्रयोदशी इससे भी अधिक बढे वह तीसरी पक्षवर्द्धिनी है.

4.प्रतिपदासे दशमीपर्यन्त तिथियां समान रहे और आगे एकादशीसे पक्षकी समाप्ति तक तिथियां बढती रहे वह चौथी पक्षवर्द्धिनी है.

5.प्रतिपदासे पक्ष समाप्ति तक तिथियां वर्धमाना होती हुई 16 होवें. इनमें जो दशमीवेधरहित एकादशी हो वह पांचवी पक्षवर्द्धिनी है.

6.जिस पक्षमें तिथिवृद्धि द्वितीयासे प्रारम्भ हुई हो उस पक्षमें जो वर्धमाना रही हो वही छठवीं पक्षवर्द्धिनी है. ये पक्ष इस कल्पमें संभव नहीं है, ऐसा ज्योतिषी कहते हैं. वहां उपपत्ति यह है कि अमावास्याके दिन सूर्य चन्द्र दोनों एक राशि पर समान अंशोमें आ जाते हैं. बादमें चन्द्र सूर्यसे आगे बढता जाता है. जितने समयमें 12 अंशोंका अन्तर होता है उतने समयसे एक तिथि बनती है यह सामान्य नियम है.

हमारा कहना तो यह है कि पद्मपुराणके पूर्वोक्त वाक्योमें नित्य, नैमित्तिक और काम्य तीन प्रकारकी एकादशी एवं रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी, वामनद्वादशी और नृसिंहचतुर्दशी ये नित्य चार इन 'विष्णुपञ्चक' नामक पांच व्रतोंको अवश्य करना चाहिये, त्याग नहीं करना चाहिये यह कहा.

ज्ञानसे या अज्ञानसे कोई पाप कर्म हो जावें या दशमीविद्धा एकादशीका उपवास (भूलसे) हो जावें तो प्रायश्चित्त करना आवश्यक है. जैसे कि पञ्चसूना दोषको मिटानेकेलिये बलिवैश्वदेव किया जाता है. विद्धाव्रतके प्रत्यवायका परिहार व्यजुली एकादशीके व्रत करनेसे होता है जिसका उल्लेख इन वचनोंमें है :

"प्राणिहिंसाका पाप काशीमें नष्ट होता है, पूर्व पुरुषोंके ऋृणका पाप गया में नष्ट होता है, इसको व्यजुली एकादशी नष्ट करती है, यदि फिर व्यज्जुलीमें भी दशमीवेधका सम्बन्ध न हो तो इस पापको नष्ट करती है"

यह सब विशेष प्रसंगवश कहा है.

प्रबोधिनी एकादशीमें जागरण करना आवश्यक है. हेमाद्रिका "प्रबोधिनीं नरः कृत्वा" इत्यादि नारदीय वचन : "जो मनुष्य प्रबोधिनीका व्रत और जागरण करता है वह पापी हो तथापि माताके पेटमें नहीं जाता है".

प्रबोधिनीव्रत मलमासमें भी करना चाहिये ऐसा दिनकरोद्योत ग्रन्थमें कहा है. यहां मलमासका अर्थ क्षयमास समझना चाहिये. "जागरणके दिन भगवानकी सेवामें जैसा श्रृंगार आदि साहित्य हो उसको दूसरे दिन रखना चाहिये" यह हरिवल्लभसुधोदय नृसिंहपरिचर्यामें कहा है.

"जो मनुष्य जागरणके दिन की हुई भगवानके श्रृंगारादि सेवाको द्वादशीके दिन बदल देता है वह अवश्य नरकगामी बनता है. जो काममूढ मनुष्य एकादशीके दिन की हुई श्रृंगारादि सेवाको द्वादशीके दिन व्यर्थ कर देता है, वह पापी अवश्य नरकको जाता है".

पारणा :

अब पारणाका विचार किया जाता है :

"आषाढ, भाद्रपद और कार्तिक के शुक्ल पक्षमें द्वादशीके दिन क्रमशः अनुराधा, श्रवण और रेवती हो तो उसमें भोजन नहीं करना चाहिये. भोजन बारह द्वादशीयोंके पुण्यको नष्ट करता है".(हेमाद्रिस्थित भविष्यपुराणका वचन)

“भगवान् विष्णु अनुराधाके प्रथम चरणमें शयन करते हैं, श्रवणके मध्य भागमें पार्श्वपरिर्वतन (करवट बदलना) करते हैं और रेवतीके अन्तिम चरणमें जागते हैं”. (हेमाद्रिस्थित विष्णुधर्मका वचन)

शयन, परिवर्तन और जागरण के नक्षत्रोंके केवल नियत चरणोंका ही त्याग करना चाहिये. भविष्यके वाक्यका विष्णुधर्मके वाक्यसे उपसंहार हो जानेसे उक्त नक्षत्रोंका सर्वांशमें निषेध न होकर उपर्युक्त नियत भागोंका ही निषेध सिद्ध हुआ. श्रवणके मध्य भागका अर्थ द्वितीय तृतीय चरण अथवा बीचकी 20 घडियां (सर्वर्क्षका मध्यतृतीयांश) है, जिसका कि निषेध किया गया है, ऐसा दिनकरोद्योतमें लिखा है. वहां भी इतनी विशेषता ध्यानमें रखने योग्य है :

पहले दिन एकादशीविद्धा द्वादशी हो और दूसरे दिन द्वादशी बहुत अल्प हो, रेवती नक्षत्रका चतुर्थ चरण द्वादशीके बाद भी रहता हो, तब अल्प समयकी द्वादशीमें ही जलसे पारणा कर लेनी चाहिये. क्योंकि द्वादशीसे मिली हुई त्रयोदशीमें पारणा करनेका निषेध है और जलपारणासे व्रतभंग भी नहीं होता है.

“आपो वा अशितमनशितं च” यह श्रुति भी ऐसा कहती है. द्वादशी और रेवती नक्षत्र दोनों दूसरे दिन अल्प समयमें ही समाप्त होते हों तब भी द्वादशीमें ही जलसे पारणा करनी चाहिये.

त्रयोदशीमें पारणा करनेका निषेध कूर्म और मत्स्य पुराण में इस प्रकार है :

“एकादशीमें उपवास कर द्वादशीमें ही पारणा करें, त्रयोदशीमें पारणा न करें, यदि त्रयोदशीमें पारणा करे तो बारह द्वादशीयोंका पुण्य नष्ट होता है”.

इस वचनमें ‘त्रयोदशी’ शब्दका अर्थ द्वादशीविद्धा त्रयोदशी है, शुद्ध त्रयोदशी नहीं है, क्योंकि शुद्ध त्रयोदशी अर्थ माननेमें अग्रिम नारदीय वचनका विरोध आता है.

“शुद्ध त्रयोदशीमें पारणा करने पर पृथिवी दान और सौ यज्ञ करनेका फल निःसन्देह प्राप्त होता है”.(नारदीय)

“जिसने कलामात्र एकादशीसे युक्त द्वादशीमें उपवास किया और त्रयोदशीमें पारणाकी उसकेलिये सौ यज्ञोंका पुण्य कहा गया है”.(विष्णुरहस्य)

“जहां एकादशी द्वादशीसे मिश्रित हो वहां भगवान् विष्णुका सन्निधान रहता है. वहां द्वादशीमें पारणा करने पर सौ यज्ञोंका पुण्य होता है. जहां एकादशी व्रतमें पीछेसे द्वादशी आती हो तो दूसरे दिन प्रारम्भिक त्रयोदशीमें पारणा करने पर सौ यज्ञोंका पुण्य होता है.

यदि एकादशी दशमीसे मिश्रित हो तो वह नरक देनेवाली है उसमें उपवास नहीं करना चाहिये". (अग्निपुराण)

इस तरह कार्तिकोत्सव पूर्ण हुए.

मार्गशीर्षोत्सव :

अब मार्गशीर्षोत्सवोंका विचार किया जाता है. स्कन्दपुराणके "मार्गशीर्षेशुभे पक्षे षष्ठ्यां प्रावरणोत्सवम्" इस वचनमें

"मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठीके दिन जो मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवानका प्रावरणोत्सव (रजाई ओढानी) कर दशर्न करता है वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है"

इस प्रकार प्रावरणोत्सवका विधान किया है. परन्तु अन्य देशोमें शीत अधिक होनेसे वह प्रबोधिनी एकादशीके दिन किया जाता है इसलिये यहां विचार अनावश्यक है.

पौषोत्सव :

पौष कृष्ण नवमीके दिन श्रीविट्ठलेश प्रभु चरणोंके प्रादुर्भाव उत्सव होता है. यह सूर्योदयव्यापिनी नवमीमें करना चाहिये. यदि नवमी अष्टमीविद्धा होकर क्षीण हो जावे तो अष्टमीविद्धा नवमीमें यह उत्सव करना चाहिये. इस उत्सवके करनेकी आवश्यकताका विचार आचार्यचरणोंके उत्सव प्रसङ्गमें किया जायगा.

माघोत्सव :

सूर्यके मकर राशिमें प्रवेश करने पर पर्वात्मक उत्सव करना चाहिये. यह स्कन्दपुराण पुरुषोत्तममाहात्म्यमें कहा है.

"हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! जब सूर्य मकर राशिमें प्रवेश करता है, उत्तर दिशामें जाना चाहता है तब उत्तरायण होता है. मकर संक्रान्तिके बाद कच्ची 20 घडियां श्रेष्ठ पुण्य काल होता है जो पितर, देव और ब्राह्मणों को प्रिय है. उस समय मनुष्य विधिपूर्वक तिर्थराजके

जलमें (प्रयागके त्रिवेणीसंगममें) स्नान कर भगवान् नारायणकी पूजन कर कल्पवृक्षको प्रणाम करे".

ऐसे और भी कर्मोंका उल्लेख कर आगे कहा है कि

"उत्तरायणमें (उत्तरायणके आरम्भ समयमें) भगवान् नारायणके दर्शन करनेसे मनुष्य सदाकेलिये शरीरबन्धनसे रहित हो जाता है".

मकरसंक्रान्तिमें जो पुण्य काल है वही पूजा काल है, इसलिये पुण्यकालके निर्णयसे ही पूजा कालका निर्णय भी हो गया. इससे मेष संक्रान्तिका भी निर्णय हो गया, क्योंकि वहां भी जो पुण्यकाल है वही पूजा काल है. मेष संक्रान्तिमें पहले और पीछे दस-दस घडियां पुण्य काल रहता है.

वसन्तपञ्चमी :

माघ शुक्ल 5 के दिन वसन्तोत्सव होता है जो कि निर्णयामृत और पुराणसमुच्चयमें बताया है.

"हे राजन्! माघ शुक्ल 5मीके दिन रति और कामदेव की पूजा कर बडा उत्सव करें, दान देवें. इससे भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं".

यहां उत्सव पूजा आदि करनेसे भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होना बताया है, इसलिये भगवानके भक्तोंको तो लक्ष्मी सहित कामदेवस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णकी ही पूजा करनी चाहिये. यद्यपि यहां पूजाकी सामग्री नहीं बताई है, तथापि शिष्ट जन दोलोत्सवकी सामग्रीको यहां ग्रहण करते हैं, जिसका विवेचन आगे किया जायगा. पूजाका समय भी वसन्तोत्सवके वचनोंमें नहीं बताया है, इसलिये सर्वसाधारण देवपूजाका समय यहां भी लिया जावे. वह सर्वसाधारण पूजाका समय पूर्वार्द्ध है, जिसमें पांच मुहूर्त होते हैं. यह दिनकरोद्योत और हेमाद्रिमें स्थित महापञ्चरात्रिके इस वचनसे मालूम होता है.

"तीन भागोमें विभक्त दिनके प्रथम भाग प्रातःकालमें देवपूजन, द्वितीय भाग मध्याह्नमें तीर्थकार्य और तृतीय भाग सांयकालमें रक्षाकार्य करना चाहिये".

बौधायनके "पूजा व्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः" इस वचनसे पूजाव्रतोमें मध्याह्नव्यापिनी तिथिको ग्राह्य बताकर जो मध्याह्नको पूजाकाल प्रमाणित किया है यह यहां ग्राह्य नहीं है. क्योंकि इस वचनमें किसकी पूजा करनी चाहिये यह स्पष्ट नहीं है,

इसलिये सन्देह होता है. इसके अतिरिक्त मध्याह्न अतिथि पूजामें सावकाश है. अतएव पूर्वोक्तानुसार पूर्वाह्नव्यापिनी तिथि ही ग्रहण करना योग्य है. पहले दिन सूर्योदयके बाद प्रवृत्त होकर पूर्वाह्नमें रहे तो ऐसे देवकार्यमें दूसरा दिन लेना चाहिये. वृद्ध याज्ञवल्क्यके "देवकार्येतिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः" इस वचनमें सूर्योदयव्यापिनी तिथि ही ग्राह्य कही है. और मार्कण्डेयके "शुक्लपक्षे तिथिर्गाह्या" इस वचनसे भी शुक्ल पक्षमें सूर्योदयव्यापिनी तिथि ग्राह्य कही है. यद्यपि "युग्माग्नियुगभूतानाम्" इस वचनमें पञ्चमी पूर्वविद्धा ग्राह्य बताई है परन्तु ब्रह्मवैवर्तपुराणके "प्रतिपत्पञ्चमीभूता" इस वचनमें प्रतिपदा, पञ्चमी, चतुर्दशी, वटसावित्री की पूर्णिमा, नवमी और दशमी ये परसंयुता हो तो इनमें उपवास न करे, यह कहा है. इसके साथ एकवाक्यता करनेसे "युग्माग्नियुगभूतानाम्" इस वचनका भी तात्पर्य उपवासमें पूर्वविद्धा ग्राह्य है यह निश्चित होता है. "चतुर्थीसंयुता कार्या पञ्चमी परया न तु" यह वचन भी शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोमें दैव पित्र्य सभी कार्योमें चतुर्थीविद्धा पञ्चमी ग्राह्य कहता है, किन्तु इसे भी निर्णयसिन्धुमें उपवास विषक ही माना है, इसलिये वसन्तोत्सवमें तो पूर्वोक्तानुसार सूर्योदयव्यापिनी परविद्धा ही लेना ठीक है. पञ्चमीका क्षय होने पर तो पूर्वविद्धा पञ्चमी ही लेनी चाहिये, क्योंकि ओर गति नहीं है. यदि पहले दिन पूर्ण रहकर दूसरे दिन और बढ जावे तो पहली ही लेनी चाहिये. ज्योर्तिनिबन्धके 'षष्टिदण्कात्मिकाः' इस वचनमें कहा है कि एकादशीके अतिरिक्त और तिथियां पहले दिन साठ घडी रहकर दूसरे दिन भी कुछ अनुवृत्त हों तो दूसरे दिनका अंश तिथिका मल है, धर्मकार्यके योग्य नहीं है. "दैवे कर्मणि पित्र्ये च" इस वचनमें संपूर्ण धर्मकार्योके बोधक 'कर्म' शब्दका प्रयोग होनेसे निर्णयसिन्धुका इसे केवल उपवास विषयक मानना अनुचित मालूम होता हो तो जहां तक संभव हो सदा पूर्वविद्धा ही पञ्चमी ग्रहण कीजीये.

वसन्तपञ्चमीसे प्रारम्भकर प्रतिदिन शिष्ट लोग फाल्गुनोत्सव करते हैं. परन्तु "फाल्गुत्सवं प्रकुर्वन्ति पञ्चाहानि त्र्यहानि वा" इस स्कन्दपुराण पुरुषोत्तममाहात्म्यके वचनके अनुसार तो फाल्गुनी पूर्णिमाके समीप आनेवाले उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रसे पांच या तीन दिन पूर्व फाल्गुनोत्सव प्रारम्भ करना शास्त्रसंमत मालूम होता है. अतएव शिष्टाचारके अनुसार अधिक दिन फाल्गुनोत्सव करनेकी शक्ति न हो तो उपर्युक्त दिनोंमें तो करना ही चाहिये.

फाल्गुनोत्सव :

फाल्गुन कृष्ण 7मी के दिन श्रीगोवर्धन धरणके पधारनेका उत्सव है. यह भक्तिमार्गीय है. इसे सूर्योदयव्यापिनी सप्तमीमें करना चाहिये. शिष्टाचार ऐसा ही है. सप्तमीका क्षय हो तो पूर्वविद्धा सप्तमीमें करना चाहिये. क्योंकि और कोई गति नहीं. यदि

सप्तमी दो हों तो पूर्व सप्तमीमें करना चाहिये. "षष्टिदण्डात्मिकाया:" इस वचनके अनुसार दूसरी सप्तमी अग्राह्य होनेसे उचित यही है.

होलिकोत्सव :

फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाके दिन पर्वात्मक होलिकोत्सव होता है. इसमें होलीकादीपन रात्रिमें पौर्णमासीके रहते हुए भद्रारहित कालमें करना चाहिये.

"फाल्गुनी पूर्णिमाको रात्रिमें होलिकोत्सव करें".(भविष्य पुराण)

"यदि दिनके उत्तरार्धमें फाल्गुनी पूर्णिमा प्रारम्भ हो तो रात्रिमें भद्रा समाप्त होने पर होलिकादीपन करें".(भविष्योत्तर पुराण)

"चतुर्दशीके दिन मध्याह्नके बाद पूर्णिमा प्रारम्भ हो तो भद्रा समाप्त होने पर अर्ध रात्रिके बाद भी होलिकादीपन करें".(पुराणसमुच्चय)

इस समयसे भिन्न समयमें होलिकादीपन करने पर दोष सुना जाता है जो इस प्रकार है :

"प्रतिपदा चतुर्दशी और भद्रा में तथा दिनमें होलिका पूजन एवं पूजनोपलक्षित प्रज्वालन किया जाय तो वह होलिका संपूर्ण वर्षका राष्ट्र और नगरको जलाती है".(नारद)

"रक्षाबन्धन और होलिका दीपन दो भद्रामें नहीं करने चाहिये, भद्रामें किया रक्षाबन्धन राजाका नाश करता है और होलिकादीपन ग्रामको जला देता है".

"भद्रामें प्रज्वालितकी गई होली देशका नाश करती है और नगरकेलिये अभीष्ट नहीं है, इसलिये इसका त्याग करना चाहिये".(पुराणसमुच्चय)

"नन्दायां नरकम्" वचन : "प्रतिपदामें प्रज्वालितकी गई होली नरक देती है, भद्रामें देशका नाश करती है, चतुर्दशीमें दुर्भिक्ष करती है".(ज्योतिर्निबन्ध)

"न कर्तव्य:" वचन : "दिनमें, भद्रामें, चतुर्दशीमें और प्रतिपदामें होलिकाका दीपन नहीं करना चाहिये".(भविष्यपुराण)

"दिनमें ढूंढाकी पूजा करे तो दु:ख देती है".(दिवोदासीय वचन)

यद्यपि "प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या फाल्गुनी पूर्णिमा सदा" इस नारद वचनमें प्रदोषव्यापिनी पूर्णिमाको होलिका दीपनमें ग्राह्य बताई है. "सायाह्ने होलिकां कुर्यात्"

इत्यादि अन्य ग्रन्थोके वचनोमें भी सायंकालमें होलिकादीपनका उल्लेख है. भविष्यपुराणके 'सार्धयामत्रयम्' वचनमें दूसरे दिन पूर्णिमा साढे तीन प्रहर रहती हो और प्रतिपदा वर्धमाना हो तो वह होली कही गई है ऐसा उल्लेख है, इससे भी होलिकादीपनका समय प्रदोष है यह ध्वनित होता है. अतएव पहले दिन प्रदोषसमय भद्रारहित न मिले तो दूसरे दिन प्रदोष समयमें होलिकादीपन किया जाय यह सिद्ध होता है, किन्तु यह मत ठीक नहीं है. क्योंकि उक्त वचनोंका तात्पर्य ओर है. "प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या" इस नारदवचनका तात्पर्य तो यह है कि फाल्गुनी पूर्णिमा सूर्योदयव्यापिनी लेना श्रेष्ठ नहीं, क्योंकि 'श्रावणी दुर्गनवमी' इस वचनमें होलिकादीपनकी पूर्णिमा पूर्वविद्धा ग्राह्य बताई है. "चतुर्दश्या च पूर्णिमा" इस युग्मवाक्यमें भी चतुर्दशीसे युक्त पूर्णिमाको बडा फल देनेवाली कहता है और पूर्णिमा प्रतिपदासे युक्त हो तो महादोष कहा है. अन्तिम तात्पर्य तो संपूर्ण रात्रिमें भद्रारहित पूर्णिमा न मिलने पर प्रदोषको एक मुख्य काल बताता है, जिसमें भद्रा रहते हुए भी होलिकाकी केवल पूजन (प्रज्वालन नहीं) की जा सके, जिसका उल्लेख "भद्रायां विहितं कार्यं होलिकायाः सुपूजनम्" इस वचनमें है.

कुछ विद्वानोंने "मध्यरात्रम् अतिक्रम्य" उपन्यास कर यह कहा कि भद्राका पुच्छ (जिसमें कि होलिका प्रज्वालित होता है) मध्य रात्रिके बाद आवे तो प्रदोष समयमें ही होलिकादीपन करें. यह प्रदोषसे मध्य रात्रि तक होलिका पूजन शुभ होता है. किन्तु मयूखकारने कहा कि यह सिद्धान्त आकर ग्रन्थोमें देखा नहीं.

कुछ विद्वानोंने पूर्वोक्त वचनोंकी व्याख्यामें 'प्रदोष' शब्दका अर्थ रात्रि कहा है. "सार्धयामत्रयं वा स्यात्" इस भविष्यपुराणके वचनका आशय तो यह है कि प्रायः फाल्गुन शुक्ल षष्ठीको मीनसंक्रान्ति लगने पर रात्रि और दिन दोनोंका मान समान त्रिंशद्घटिकात्मक हो जाता है. ऐसे समयमें चतुर्दशीका सर्वभोगकाल 59 घडियोंका, पूर्णिमाका 5 पल कम 60 घडियोंका और प्रतिपदाका 61 घडियोंका हो, एवं चतुर्दशी सूर्योदयके बाद 30 घडी रहे, दूसरे दिन पूर्णिमा सूर्योदयके बाद 5 पल कम 30 घडी रहे, तीसरे दिन प्रतिपदा सूर्यास्तके 55 पल पूर्व तक रहे. ऐसी परिस्थितिमें पूर्णिमाके बाद प्रदोषवर्तिनी प्रतिपदामें होलिकादीपन होगा. ऐसा होलिकादीपन "सार्धयामत्रयम्" वचनका विषय है.

पहले दिन रात्रिमें भद्रारहित पूर्णिमाके मिलने पर भी उसका त्याग कर वर्धमाना प्रतिपदामें होलिकादीपन कराना अभीष्ट नहीं, क्योंकि "वह्नौ वह्निं परित्यजेत्" (वह्नौ=प्रतिपदामें वह्निं परित्यजेत्=अग्निप्रज्वालनका त्याग करें) यह भविष्यद्वचन विरुद्ध हो जाता है. यदि चतुर्दशी पहले दिन सम्पूर्ण प्रदोषमें रहती हो और दूसरे दिन पूर्णिमा कम

होनेसे प्रदोषसे पहले ही समाप्त हो जाती हो, ऐसी दशामें पहले दिन सम्पूर्ण रात्रिमें भद्रा रहेगी.

भद्रामें होलिकादीपनका निषेध है तथापि मुख्य अंशका त्याग कर पहले दिनकी ही रात्रिमें भद्राके शेष अंशमें होलिकादीपन करना चाहिये. इसमें प्रमाण नारदपुराणका वचन

"पहले दिन पूर्णिमा प्रदोषव्यापिनी न हो अर्थात् प्रदोषके बाद प्रवृत्त होती हो तो भद्राके केवल मुखांशका त्याग कर होलिकादीपन करें".

"यदि प्रतिपदा तिथि साढे तीन प्रहरोंसे भी अधिक पूर्णिमासे युक्त हो तो (पहले दिनकी रात्रिमें) भद्राके मुखांशका त्याग कर होलिकादीपन किया जाय ऐसा विद्वानोंने कहा है". (ज्योतिर्निबन्ध स्थित विद्याविनोदका वचन)

सार यह कि चतुर्दशी, भद्रा, प्रतिपदा और दिन —इन चारोंसे व्यतिरिक्त होलिकादीपन करना चाहिये, यदि ऐसा समय न मिले तो 'सार्धयामत्रयम्' वचनके अनुसार पूर्णिमाके बाद आनेवाली वर्धमाना प्रतिपदामें होलिकादीपन करें. यदि 'सार्धयामत्रयम्'के अनुसार प्रतिपदा न मिले तो पहले दिनकी रात्रिमें भद्राके मुखांशका त्याग कर होलिकादीपन करें ऐसा सिद्धान्त है.

दोलोत्सव :

दोलोत्सव फाल्गुन शुक्ल पौर्णमासीमें या पौर्णमासीके समीपकी उत्तराफाल्गुनीमें दोलोत्सव करना चाहिये यह इन वचनोंमें कहा है :

"मनुष्य फाल्गुनी पूर्णिमामें दोलामें झुलते हुए गोविन्दके दर्शन कर वैकुण्ठको जाता है".(ब्रह्मपुराण)

"फाल्गुनी पूर्णिमाके मास उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें पुरुषोत्तमका दोलोत्सव करें". (स्कन्दपुराण पुरुषोत्तममाहात्म्य)

"हे राजन्! जो भक्त उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें मेरा दोलोत्सव करते हैं और दर्शन करते हैं वे ब्रह्महत्या आदि पापोंसे रहित हो जाते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है".

"फाल्गुन मासमें उत्तम दोलोत्सव करें, जहां भगवान् गोविन्द भक्तों पर अनुग्रह करनेकी इच्छासे क्रीडा करते हैं".

यहीं आगे "चतुर्दश्यां निशामुखे" इस वचनसे चतुर्दशीके दिन सायंकाल होलिकादीपनका विधान बताकर 'प्रातर्यामे' वचनसे पिछली रातको भगवानकी पूजा आदि एवं दोलाके समीप लेजानेका उल्लेख किया है.

"फल और पुष्पोंसे नमे हुए वृक्षोंसे बनाये हुए सुन्दर वृन्दावनमें जिसमें कि मत्त भ्रमर घूम रहे हैं, कोयलें मधुर शब्द कर रही है, भिन्न-भिन्न जातिके अनेक पक्षी खेल रहे हैं, कई उपशोभाएं बनाई हुई है, काले अगरका धूप लग रहा है, भगवानको विराजमान करे और सभी उपचारोंसे पूजन करें. भगवानकी भावना इस प्रकार करे कि वृन्दावनमें कदम्ब वृक्षके नीचे, गोपियोंके मण्डलके मध्यमें ग्वाल और गोपियां भगवानको झुला रहे हैं. हास्य नृत्य विलासोंसे भगवान् क्रीडा कर रहे हैं. इस प्रकार ध्यान कर कपूरसे सुरभित गुलाल, अबीर वगैरा लाल, सफेद, पीले सुगन्धित चूर्ण चारों ओर डारें और धीरे-धीरे सात बार भगवानको झुलावें. इसी प्रकार सात-सात बार झुलावें तो सब पापोंको दूर करता है, भक्तिकी वृद्धि करता है, मनुष्योंके भोग और मोक्षका एक ही कारण है. भगवानका जो प्रथम सात बार झुलना है, यह सहज क्रीडा है. (यह स्वामिनीजीके भावसे हैं.) यह पापोंके समूहको नष्ट करती है, मूल अविद्याको निवृत्त करती है. भगवानका जो दूसरी बार झूलना है इसका दर्शन गोहत्या आदि उपपातकों को हरण करता है. (यह श्रुतिरूपा गोपियोंके भावसे है) तीसरी वारका झूलना भी सब पापोंको नष्ट करता है. इसमें कोई सन्देह नहीं, (यह व्रजकुमारियोंके भावसे हैं)".

—इत्यादि वचनोंसे दोलोत्सवका प्रकार और फल दोनों कहे हैं. अतएव यही प्रकार एवं रात्रिका अन्तिम प्रहर समय है ऐसा निश्चय होता है. दोलोत्सवकी तिथि ब्रह्मपुराणमें पौर्णमासी और स्कन्दपुराणमें चतुर्दशी कही है. इस प्रकार भिन्न-भिन्न दो तिथियोंके कहनेसे एवं "तपस्ये मासि राकायाम्" इस स्कन्दवचनके 'राकायाम्' पदमें सामीप्यार्थक सप्तमी ग्रहण करनेसे यह आशय प्रकट होता है कि फाल्गुनके पौर्णमासीके समीप जब उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र हो उस समयमें दोलोत्सव करना चाहिये. वह भी पिछली रातको जिस दिन मिले उस दिन करना चाहिये. किसी भी तिथिमें दोलोत्सवका आग्रह करना उचित नहीं. तिथिकी अपेक्षा नक्षत्र प्रबल है, यह विजया दशमीके निर्णयमें दिखा दिया गया है. यहां यह भी नहीं कह सकते कि 'राकायाम्'का सामीप्य अर्थ माननेमें कोई नियामक नहीं, क्योंकि फाल्गुन चैत्र आदि मासनाम (चित्रायुक्ता पौर्णमासी यस्मिन् मासे स चैव:.) प्रबलित हुए हैं. परन्तु यह सम्बन्ध सार्वदिक नहीं है, इसलिये जब पूर्णिमाके साथ नक्षत्र नहीं होता है तब नक्षत्रोंको तिथियोंके साथ सामीप्य सम्बन्ध मानकर ही उक्त मासनामोंका व्यवहार किया जाता है, इसलिये यहां भी इस सम्बन्धको ग्रहण करनेमें कोई दोष नहीं. अतएव प्रस्तुतमें 'तपस्ये' 'मासि' इत्यादि मासवाचक शब्दोंके सप्तमीका अर्थ सामीप्य लिया गया है, क्योंकि नियामक नहीं है.

शिवरात्रि व्रत वैष्णवोंको करना चाहिये या नहीं?

अब यहां फाल्गुनोत्सवोंका प्रसंग होनेसे यह विचार किया जाता है कि फाल्गुन कृष्ण 14को किया जानेवाला शिवरात्रि व्रत वैष्णवोंको करना चाहिये या नहीं?

उत्तर : शिवरात्रि व्रत वैष्णवोंको नहीं करना चाहिये. कालमाधव निर्णयसिन्धु आदिमें कहा है कि यह व्रत सबके लिये नित्य है. इसमें प्रमाण ये वचन है : स्कन्दपुराण ‘परात्परतरम्’ वचन

“शिवरात्रिका व्रत उत्तमोत्तम है, इससे उत्तम दूसरा नहीं है. जो जीव भक्तिपूर्वक त्रिलोकीके स्वामी भगवान् शंकरकी पूजा नहीं करता है, वह सहस्र जन्मतक संसारमें भ्रमण करता रहता है. इसमें कोई सन्देह नहीं”.

दिनकरोद्योतमें कहा है कि जैसे

“वैष्णवो वाऽथ शैवो वा कुर्यादेकादशीव्रतम्”

इस ‘शिवधर्म’के वचनमें और

“वैष्णवो वाऽथ शैवो वा सौरोऽप्येतत्समाचरेत्”

इस सूर्यपुराणके वचनमें

शैव, वैष्णव आदि सभी साम्प्रदायिकोंकेलिये एकादशीका व्रत नित्य कहा है, ऐसा विशेष वचन जन्माष्टमी और शिवरात्रिके विषयमें कोई नहीं है, इसलिये ये सबकेलिये नित्य नहीं किन्तु जो केवल वैष्णवोंसे भिन्न हैं उनके लिये शिवरात्रिव्रत नित्य है और जो शैवोंसे भिन्न हैं उनकेलिये जन्माष्टमीव्रत नित्य है.

नृसिंहपरिचर्यामें तो यह उल्लेख है कि “सौरो वा वैष्णवो अन्यदेवता-न्तरपूजकः” इस वचनमें सूर्य विष्णु आदि अन्य देवोंकी पूजा करनेवाला भी यदि शिवरासे बहिर्मुख हो तो उसे उन देवोंकी पूजाका फल नहीं मिलता है.

माध्व सांप्रदायिक वैष्णव तो शिवको जीव कोटिमें गिनते हैं और व्रत सर्वथा नहीं करते हैं. जो भी करते हैं वे भी शिवके अन्तर्गत विष्णुकी पूजा करते हैं. क्योंकि “यास्त्वन्यदेवतिथयः तासु विष्णुं प्रपूजयेत्” इस वाराह्न वचनमें अन्य देवोंकी तिथियोंमें विष्णुपूजन करनेका विधान है, परन्तु यह सब अयोग्य है. अहंकारके अधिष्ठाता रुद्रकी जीव

कोटिमें गणना होने पर भी तमोगुणोपाधि भगवान् शंकरकी गणना ईश्वर कोटिमें है. श्रीमद् भागवत चतुर्थ स्कन्धके अत्रि उपाख्यानसे यह निश्चय होता है.

"जगतके उत्पादक जो प्रकृति-पुरुष हैं उनका स्वामि, शिव और शक्ति से पर जो भेदशून्य ब्रह्मतत्त्व है वह आप हैं, ऐसा मैं जानता हूं".

इसमें भगवान् शंकरको शिव और शक्ति से पर कहकर परमशिव प्रमाणित किया है. इस परमशिवसे परे एक परमपुरुष और है जिससे परमशिव अनुगृहीत हैं. यह रहस्य अग्रिम वचनसे स्पष्ट है.

"आप परम पुरुषकी अपार मायासे अस्पृष्ट बुद्धि हैं, सबके द्रष्टा हैं. हे स्वामि! उस मायाके द्वारा जिनकी आत्मा नष्ट हो गई है, जिनके चित्त कर्मोंके पिछे घूमते हैं ऐसे जीवों पर अनुग्रह करने योग्य हैं".

यहां जिस मायाशाली परम पुरुषका वर्णन है वह श्रीकृष्ण हैं यह "कृषिर्भूवाचकः शब्दः" इस 'कृष्ण'पदका निर्वचन करनेवाली श्रुतिसे एवं "त्वमेक आद्यः" आदि श्रीभागवतके वचनोंसे निश्चय करना चाहिये. यह यहां संक्षेपसे वर्णन किया है. विस्तृत विवेचन बालबोधकी टीकामें एवं प्रहस्त और पिन्दिपालमें किया है.

सार यह है कि भगवान् शंकरको जीव मानना तो अनुचित है, परन्तु शिवरात्रि आदि व्रत तो नहीं ही करने चाहिये. श्रीभागवत चतुर्थस्कन्धके वचनोंमें शिवव्रतोंकी मना की गई है. चतुर्थ स्कन्धके "भवव्रतधरा ये च" इत्यादि वचनमें

"भृगु शाप देता है : जो शिवके व्रत करनेवाले हैं ओर जो भी उनका अनुसरण करते हैं वे सब उत्तम शास्त्रोंसे वैर रखनेवाले पाखण्डि अपवित्र मूर्ख और जटा भस्म अस्थि धारण करनेवाले होवें".

ऐसा वचन होने पर भी शिवव्रतोंके विधान करनेवाले शास्त्रवचन निरवकाश (अनुपयोगी) सिद्ध नहीं होते हैं, क्योंकि उपर्युक्त भृगुशाप होनेसे पहले इनको अवकाश मिल चुका है. जैसे कि अक्षतयोनि कन्याओंके पुनर्विवाह और गवालम्भीको (यज्ञमें गोवधका) विधान करनेवाले वचनोंको कलिवर्ज्यशास्त्रसे पहले अवकाश मिला है. 'भवव्रत' शब्दसे पाशुपतसम्प्रदायोक्त व्रत ही लिये गये हैं यह कथन भी ठीक नहीं. क्योंकि 'भवव्रत' शब्दके अर्थको इस प्रकार संकुचित करनेमें कोई प्रमाण नहीं है.

यदि कहा जाय कि "सच्छास्त्रपरिपन्थिनः' (उत्तम शास्त्रोंसे वैर रखनेवाले) यह विशेषण पाशुपतोमें चरितार्थ होनेसे 'भवव्रत' शब्दसे पाशुपतव्रत लिये जाते हैं तो यह भी

उचित नहीं, क्योंकि उत्तम शास्त्रोंसे बहिर्मुख होकर जिस हद तक विरुद्धाचरण करना शापके अन्तर्गत है उसका विवरण "नष्टशौचा मूढधियः" इत्यादि अग्रिम विशेषणोंसे किया गया है, इतना ही सच्छास्त्र परिपन्थित्व यहां ग्राह्य है, अन्यथा "नष्टशौचा मूढधियः" इत्यादि तीन श्लोकोंसे दो शापोंका उल्लेख करना व्यर्थ हो जाता है, क्योंकि सच्छास्त्रपरिपन्थित्वके (उत्तम शास्त्रोंसे वैरके) अन्तर्गत सभी है. सार यह है कि पूरे सच्छास्त्रपरिपन्थी पाशुपतोंका इस प्रकरणमें उल्लेख न होनेसे यहां विद्यमान 'भवव्रत' शब्दका केवल पाशुपतव्रत अर्थ नहीं हो सकता.

इस प्रकार शिवव्रतका निषेध करनेसे शिवद्वेष साबित होगा यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि शिवव्रतोंके सत्य अनुवाद रूपसे शिवका नाम है, इसीसे 'परात्परतरम्' वचनमें वर्णित दोषका भी परिहार हो गया जिसमें यह उल्लेख है कि नारायणके अनन्य भक्त परात्पर स्थानको प्राप्त करते हैं, परन्तु जो शंकरसे द्वेष करते हैं वे उस स्थानको प्राप्त नहीं करेंगे. शिवके व्रत शास्त्रनिषिद्ध होनेसे ही नहीं किए जाते हैं, न कि शिवके साथ द्वेष होनेसे. जैसे

"हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेत् जैनमन्दिरम्"

यह शास्त्रीय निषेध होनेसे 'जैनमन्दिर' शब्दवाच्य बौद्ध मन्दिरमें प्रवेश नहीं किया जाता है. शंकर परब्रह्मके गुणावतार हैं, वैष्णवधर्मोके उपदेशक हैं, वेदस्वरूप हैं, सब विद्याओंके अधिष्ठाता हैं, सब शरीरधारियोंके नियामक हैं अतएव अवश्य पूजा करने योग्य और आदरणीय हैं. शिवरात्रि प्रदोष आदि शिवव्रत तो भृगुशाप होनेसे निन्दित हैं, अतः नहीं करने चाहिये.

ग्रहणमें भोगसमर्पणादि :

अब प्रसङ्गवश यह बताया जाता है कि यदि (सूर्य-चन्द्र) ग्रहण हों तो भगवानके भोग-समर्पण आदि सेवा किस प्रकार करनी चाहिये.

उत्तर यह है कि पुष्टिमार्गीय सेवामें वात्सल्य स्नेहकी प्रधानता होनेसे, जो न्याय बच्चोमें लागू होता है उसीका आदर करना चाहिये.

ग्रहणके विषयमें एक मत यह है कि बाल-वृद्ध-रोगियोंके लिये जिस प्रहरमें ग्रहण हो वह और उससे पूर्वका एक प्रहर निषिद्ध है. "सायाह्ने ग्रहणं चेत्" इस मार्कण्डेय वचनमें

उल्लेख है कि सायंकालमें (दिनके पश्चीम भागमें) ग्रहण हो तो अपराह्नमें और अपराह्नमें ग्रहण हो तो मध्याह्नमें और मध्याह्नमें ग्रहण हो तो सङ्गवकालमें भोजन नहीं करना चाहिये.

संगवमें ग्रहण हो तो ग्रहणसे पूर्व प्रातः भोजन न करें. परन्तु यह मत विचारणीय है. उक्त वचनमें 'अपराह्न' 'सायाह्न' आदि पदोंसे पांच भागोमें विभक्त किये गये दिनके दो पञ्चमांशोंमें भोजनका निषेध किया गया है. इससे दिन रात्रिके सभी ग्रहणोमें दो प्रहरोंका त्याग स्वीकार करना तो इन व्याख्येय वचनोंसे विरुद्ध है. (प्रहर दिनका चतुर्थांश है, पञ्चमांश नहीं) किन्तु सूर्यग्रहणमें उक्त वचनने दो पञ्चमांशोंका त्याग कहा है इसलिये उसमें ऐसा करना उचित है. चन्द्रग्रहणमें कोई खास वचन मिलता नहीं है, इसलिये सूर्यग्रहणका न्याय चन्द्रग्रहणमें भी मानना चाहिये. यद्यपि रात्रिको पांच भागोमें विभक्त करना प्रसिद्ध नहीं है, तथापि तीन और चार प्रहर तकका वेध बतानेवाला शास्त्र शक्त अधिकारियोंसे सम्बन्ध रखता है, इसलिये अशक्त अधिकारियोंमें संचारित करनेकेलिये वेधका छोटा रूप स्वीकार करना अर्थात् सिद्ध है और उचित भी है. "ग्रहणं तु भवेत् इन्दोः" इस वृद्धवसिष्ठके वचनमें लिखा है कि

"रात्रिके पहले प्रहरके बाद ग्रहण हो तो मध्याह्नसे पूर्व भोजन करे और रात्रिके अन्तिम प्रहरमें ग्रहण हो तो रात्रिके पहले प्रहरसे पूर्व भोजन करें".

यहां रात्रिमें प्रहरोंके त्यागका विधान है. अतः बाल, वृद्ध आतुरों को रात्रिमें ग्रहण जिस प्रहरमें हो उससे पूर्वका एक प्रहर और दिनमें जिस पञ्चमांशमें ग्रहण हो उससे पूर्वका एक पञ्चमांश त्याग करना चाहिये ऐसा एक मत है.

वस्तुतः "ग्रहणं तु भवेत् इन्दोः" इस वचनका "चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन्" इस शक्त विषय शास्त्रसे उपसंहार करने पर "चन्द्रग्रहे तु" इस वचनके "बालवृद्धा तुरैर्विना" इस अंशसे जो बालवृद्ध आतुरोंकी अनुमति मिली है उससे यह प्रमाणित होता है कि जिस प्रहरमें ग्रहण हो उसीका बालवृद्ध आतुर भोजनमें त्याग करें. शेष प्रहर अनिषिद्ध है. ऐसा बालादि अशक्तोंकेलिये पृथक् निर्णय करना योग्य है इस बालादिन्यायके अनुसार.

जब कि सूर्य ग्रहण हो तो दिनके दो पञ्चमांशोंसे पूर्व और चन्द्रग्रहण हो तो रात्रिके प्रथम प्रहरमें होने पर सूर्यास्तसे पूर्व भगवानकेलिये घृतपक्व अन्नादि सामग्री समर्पण करनी चाहिये. रात्रिके द्वितीयादि अन्य प्रहरोमें चन्द्रग्रहण हो तो सूर्यास्तके अनन्तर भी सामग्री समर्पित करना दूषित नहीं है. तथापि शयनके समयमें संकोच होता है इसलिये दिनमें ही सामग्री समर्पित कर शयन आरती करना उचित है.

ग्रहणमें उत्सव :

ग्रहण होने पर उत्सव कैसे करना चाहिये यह शंका शेष रहती है.

इसका उत्तर यह है कि

“तिल और दर्भों के रखनेसे ग्रहणमें कांजी, दूध, छाछ, दहीं, तैल और घृतसे तले हुए पदार्थ और मणिकपात्रमें रक्खा हुआ जल ये दूषित नहीं होते हैं”

ऐसा कहते हैं. अतः तिल-दर्भोके स्थापनसे आवश्यक सामग्री दूषित नहीं होती है जिससे उत्सव सर्वदा किया जा सकता है.

इतनी विशेषता है कि चन्द्रका ग्रस्तास्त ग्रहण हो तो शास्त्रसे मोक्षकाल जानकर स्नान करें. शुद्ध होकर शीघ्रतासे अल्प शृंगार आदि कर गौण कालमें भी उत्सव करें. इस विषयमें प्रमाण नहीं है यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि “ग्रस्ते चास्तंगते त्विन्दौ” इस भृगु वचनमें लिखा है कि ग्रस्त हुआ चन्द्र अस्त हो जावे तो शास्त्रसे मुक्तिका निश्चयकर स्नान होम आदि कार्य करें. किन्तु भोजन तो पुनः शुद्ध चन्द्रका उदय होने पर ही करें. यह वचन निर्णयसिन्धु भगवद्भास्कर और दिनकरोद्योतने लिखा है. इसमें वर्तमान “स्नानहोमादिकम्” इस आदि पदसे आवश्यक भगवत्सेवाका भी संग्रह करना उचित है. ग्रहणमें देवपूजा करनेका विधान अन्य वचनोंमें भी है. इसी न्यायसे दीपमालिकाके दिन सूर्य ग्रस्त होकर अस्त हो जावे तब भी उत्सव करना चाहिये. भगवानकेलिये घृतपक्वके अतिरिक्त दूसरी अन्नसामग्री ग्रस्तास्त ग्रहणके अहोरात्रमें नहीं करनी चाहिये! क्योंकि घृतपक्वातिरिक्त पक्व अन्न ग्रहणसे स्पर्श होनेपर त्याग करना चाहिये ऐसा अन्य वचनोंमें उल्लेख है, और सब यथास्थित है.

ग्रस्तास्त चन्द्रगहण :

चन्द्रका जब ग्रस्तास्त ग्रहण हो तो शास्त्रसे मोक्षका निश्चय कर शुद्ध होनेके अनन्तर भगवानके नैवेद्यकेलिये सामग्री बनावे, अपने लिये बनाना तो उचित नहीं है. जैसे “व्रीहीन् अवहन्ति” इस श्रुतिसे बोधित व्रीहिसे सम्बन्ध रखनेवाला अवघात (कूटना) व्रीहि निवृत्त होनेपर और कृष्णलोंके ग्रहण करने पर निवृत्त हो जाता है, इसी प्रकार ग्रस्तास्तमें भोजनका निषेध होनेसे भोजनसे सम्बन्ध रखनेवाला पाकनिर्माण भी निवृत्त हो जाता है. द्वारका लोप होनेपर उससे सम्बन्ध रखनेवालेका लोप होना न्याययुक्त है.

वास्तविक बात तो यह है कि शुद्ध चन्द्रके उदय होने पर भोजनका विधान है. इसलिये जब तक शुद्ध चन्द्रका उदय न हो, भोजनसे साक्षात् सम्बन्ध रखनेवाले परिवेषण(परोसना) आदि कार्य नहीं करने चाहिये. भोजनमें परोक्षतया उपयुक्त होनेवाले पाकनिर्माण आदि कार्य, सामान जमा करनेके समान है, इनकेलिये शास्त्रकी अनुमति है.

ग्रस्तास्त सूर्यग्रहण :

सूर्यके ग्रस्तास्त ग्रहणमें "सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात् पूर्वं यामचतुष्टयम्" इस वचनके अनुसार ग्रहण जिस प्रहरमें हो उससे चार प्रहर पूर्व भोजन त्याग करनेका विधान है. और ग्रहण होनेके अनन्तर "ग्रस्तावेवास्तमानं तु" इस माधव वचनके अनुसार दूसरे दिन शुद्ध सूर्य और चन्द्र के दर्शन कर स्नान कर भोजन करनेका विधान है. इसलिये ऐसे अवसर पर समर्थको आठ प्रहरतक उपवास रखना आवश्यक है. बालवृद्ध और रोगियों के लिये "सायाह्ने ग्रहणं चेत् स्यात्" इस पूर्वलिखित मार्कण्डेय वचनके अनुसार पांच भागोमें विभक्त किये गये दिनके दो अंशका (जिस अंशमें ग्रहण हो वह और उससे पूर्वका) त्याग करना चाहिये.

सार यह है कि सूर्यके ग्रस्तास्त ग्रहणमें मध्याह्न या संगवकालमें भोजन करना चाहिये.

इसी न्यायको लेकर भगवानकेलिये राजभोग समर्पण भी मध्याह्नमें या मध्याह्नसे पूर्व करना चाहिये. जो भगवत्प्रसाद घृतपक्वसे भिन्न हो (सखडी वगैरह अन्नसामग्री) उनको गायोंको देनी चाहिये, शिष्टाचार ऐसा ही है. जब ग्रस्त हुआ सूर्य अस्त हो जाय तो शास्त्रसे मोक्षकाल जानकर स्नान करें. शुद्ध जल लाकर भगवानको भी स्नान करावें. बादमें शुद्ध जलसे घृतपक्व सामग्री तैयार कर वह सामग्री और दुग्ध आदि भगवानकेलिये समर्पण करें. फिर शयन करावें. सक्ध्यावन्दन आदि कार्य करें.

यद्यपि चन्द्रके ग्रस्तास्त ग्रहणकी समाप्तिमें "ग्रस्तेचास्तंगते त्विन्दौ" इत्यादि विशेष वचन जिस प्रकार स्नान, होम, सक्ध्या आदि कार्योंका विधान करनेवाले हैं, इस प्रकार सूर्यके ग्रस्तास्त ग्रहणकी समाप्तिमें स्नान, होम, सक्ध्या आदिका विधान करनेवाले विशेष वचन नहीं है. तथापि दोनों प्रकारके ग्रहणोमें समान न्याय रखना आवश्यक है, इसलिये उपर्युक्त वचनमें 'इन्दु' पदको सूर्यका भी उपलक्षक मानना चाहिये. ऐसा न माननेपर तो सायं सक्ध्याका लोप हो जायगा. सार यह है कि चन्द्र और सूर्य दोनोंके ग्रस्तास्त ग्रहणोमें दूसरे दिन शुद्ध सूर्य और चन्द्र के दर्शनके अनन्तर होनेवाले शुद्ध स्नानके विना भी उससे पूर्व दिन या रात्रिमें नित्य नैमित्तिक धर्मकार्य, सक्ध्यावन्दन, होम, पूजा आदि करना उचित है. "ग्रस्तेचास्तंगते त्विन्दौ" इस भृगुवचनका यही तात्पर्य है.

कोई विद्वान् सूर्यके ग्रस्तास्त ग्रहणमें दूसरे दिन शुद्ध सूर्योदय होनेपर सक्ध्यावन्दन आदि कार्य करते हैं. भगवद्भास्करने चन्द्रके ग्रस्तास्त ग्रहणका न्याय सूर्यके ग्रस्तास्तमें स्वीकार भी नहीं किया है इसलिये रातको सक्ध्यावन्दन आदि कार्य न किये जाय तो कोई दोष नहीं ऐसा कहते हैं.

मुझे तो कुछ और भी आवश्यक मालूम होता है. वह यह कि बाल, वृद्ध और रोगियों केलिये ग्रहणसे पूर्व जो समय संकोचसे भोजन व्यवस्था बताई है ऐसी ग्रस्तास्तके अनन्तर नहीं बताई है. अतएव इसकेलिये भी न्याय साम्यका आदर करना आवश्यक है. ऐसा न करने पर बाल-वृद्ध-आतुरोंका निर्वाह नहीं हो सकता. न्याय साम्यसे सिद्ध हुई शुद्धि केवल अशक्तोंकेलिये है, शक्त और अशक्त सभीकेलिये नहीं है. इसलिये रात्रिमें जो भगवानके नैवेद्य तैयार किया गया हो वह भी गायोंकेलिये देना चाहिये, या उसका बाल-वृद्ध-आतुरोंको उपयोग करना चाहिये. दूसरे दिन सूर्यउदय होनेपर स्नानसे शुद्ध होकर शुद्ध जलसे रसोई आदि सब कार्य करें. रात्रिमें लाये हुए जलसे रसोई आदि न करें. क्योंकि उस जलको शुद्ध प्रमाणित करनेवाला कोई वचन नहीं है.

चैत्रोत्सव : श्रीरामजन्मोत्सव

चैत्र शुक्ल नवमीके दिन श्रीरामजन्मोत्सव करना चाहिये. यह हेमाद्रि स्थित अगस्त्यसंहिताके "चैत्रे नवम्या" इत्यादि वचनोंमें इस प्रकार कहा है

"चैत्र शुक्ल नवमीका मध्याह्न था, पवित्र पुनर्वसु नक्षत्र था, चन्द्र और गुरु उदय हो रहे थे, अर्थात् लग्नमें थे, सूर्य मेष राशि पर था, सब मिलकर पांच ग्रह उच्च राशि पर थे, लग्न कर्क था ऐसे समयमें परमपुरुष परब्रह्म अपनी कलासे कौशल्यामें प्रकट हुए. प्रतिवर्ष उस दिन उपवास करें".

अन्य योग न हो तथापि केवल नवमीमें उपवास करें. क्योंकि सर्वत्र वचनोंमें 'नवमी' शब्दका प्रयोग है.

"यदि चैत्र शुक्ल नवमी पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त हो और वही मध्याह्न समयमें रहे तो उत्कृष्ट पुण्य देनेवाली होती है".(अगस्त्यसंहिता)

यहां 'सैव' वही शब्दसे पूर्ववर्णित पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त नवमीका मध्याह्नके समय स्थिति होने पर 'महापुण्यतमा' मध्याह्न भिन्न समयमें स्थिति होने पर पुण्यतमा और किसी भी अंशमें नवमीके साथ पुनर्वसुका सम्बन्ध न हो तो पुण्या है. ऐसा दिनकरोद्योतने कहा है. यहां "अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ" इस पुराण समुच्चयके वचनके अनुसार भगवान् श्रीरघुनाथका प्रादुर्भाव मध्याह्न समयमें हुआ है, ऐसा प्रमाणित होता है. अगस्त्यसंहितामें

कर्क लग्नमें कहा है इससे भी प्रादुर्भाव समय मध्याह्न निश्चित होता है. यही पूजाका समय भी है. अतएव मध्याह्नव्यापिनी रामनवमी ग्रहण करनी चाहिये, ऐसा बहुत विद्वान् कहते हैं. यथार्थ तो यह है कि वैष्णव भिन्न धार्मिक जन ऐसा करें, वैष्णव तो पारणाके दिन दशमी मिलने पर विद्धाका त्याग अवश्य करें. कालमाधवमें उद्धृत ''नवमी चाष्टमीविद्धा'' वचन

''विष्णुपरायण अष्टमीविद्धा नवमीका त्याग करें नवमीमें उपवास अवश्य करे और दशमीमें ही पारणा करें''.

उक्त वचनका तात्पर्य यह भी नहीं कह सकते कि जब दोनों दिन मध्याह्नमें रामनवमी रहती हो, न रहती हो, या किसी एक अंशमें समान रहती हो तब पहली अष्टमीविद्धा नवमीका त्याग कहा है. क्योंकि ऐसे स्थल पर दूसरे दिन दशमी स्वयं उपलब्ध होती है इसलिये दशमीमें ही पारणा करे, यह नियम विधान व्यर्थ हो जाता है. प्रतापमार्तण्डने जो उक्त वचनका आशय यह बताया कि दोनों दिन मध्याह्नमें नवमीके साथ पुनर्वसु नक्षत्रका सम्बन्ध हो वा दोनों दिन न हो तब पहली अष्टमीविद्धाका त्यागकर दूसरी ली जावे. किन्तु यह भी ठीक नहीं, क्योंकि दूसरे दिन मध्याह्नमें नवमीके रहने पर तो उत्तर दिनमें पारणाकेलिये दशमी सर्वदा मिलेगी, इसलिये पूर्वोक्तानुसार पारणाका नियमविधान व्यर्थ होता है. इस नियमविधानसे ही पारणाके दिन दशमीका क्षय होनेसे एकादशी हो तो जलसे पारणा करें, इसका भी उत्तर मिल गया. (व्रतकी एकादशीमें पारणा प्राप्त ही नहीं है). दशमीके क्षयमें दूसरे दिन विद्धा एकादशी रहेगी. इसमें भोजन होय. जलसे पारणा क्यों करें.

रामार्चनचन्द्रिकामें अगस्त्यसंहिताका

''दशमी आदि तिथियां वर्धमाना हो तो वैष्णव अष्टमीविद्धा नवमीका त्याग अवश्य करें. सभी वैष्णव भिन्नोका भी शुद्ध नवमीमें व्रत करना निश्चित है''

यह वचन है. हेमाद्रि और माधव ने इसका उल्लेख नहीं किया है इसलिये यह वचन निर्मूल है ऐसा दिनकरोद्योत कहता है. तात्पर्य यह है कि ''नवमी चाष्टमीविद्धा'' इस पूर्वोक्त वचनमें विद्धानिषेधनके विधानके बाद ही नवमीमें उपवास करनेका विधान किया है. इसलिये विद्धानिषेधके समान नवमीमें उपवास करनेकी विधि भी ''उपक्रमोपसंहारौ'' इस वचनमें कहे हुए तात्पर्यनिर्णायक उपक्रम लिङ्गके अनुसार केवल वैष्णवविषयक है, यह निश्चय होता है. अतएव जब दशमी समान रहे और केवल नवमीकी वृद्धि हो या दशमीका क्षय भी हो और नवमीकी वृद्धि हो तब नवमीमें उपवास करना उक्त वचनसे प्राप्त है, इसलिये विद्धाके त्याग करानेमें ही उक्त वचनका तात्पर्य है. यह 'नवमी चाष्टमीविद्धा' वचन हेमाद्रिमाधव आदि सभी धर्मशास्त्रकारोंको संमत है और इसीसे प्रयोजन सिद्ध हो

जाता है. अतएव “दशम्यादिषु वृद्धिश्चेद्” यह वचन “नवमी चाष्टमीविद्धा” वचनसे सिद्ध हुए अर्थका केवल अनुवादक है. यह सब विचार श्रीप्रभुचरणोंने “तथा च विद्धानिषेधे सति” इत्यादि ग्रन्थ श्रीरामनवमी निर्णयमें कहा है!

श्रीप्रभुचरणोंका रामनवमीनिर्णय इस प्रकार है :

अगस्त्यसंहिताका “चैत्रशुद्धा तु नवमी” वचन “चैत्रशुक्ल 9मी यदि पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त हो और न हो, मध्याह्नके समय रहती हो तो बडा पुण्य देनेवाली होती है”. रामार्चनचन्द्रिकामें “विद्धा चेत् ऋक्षसंयुक्ता” वचन “अष्टमीविद्धा नवमी यदि पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त हो तो व्रत कैसे हो, क्योंकि विद्धाका निषेध सुना जाता है और उपवास योग्य नवमी है ऐसा वचनोंमें उल्लेख है? ऐसा प्रश्न करने पर निर्णय कहते हैं “नवमी चाष्टमीविद्धा”. विष्णुभक्त अष्टमीविद्धा नवमीका त्याग करें, नवमीमें अवश्य उपवास करें और दशमीमें ही पारणा करें. तात्पर्य यह कि पुनर्वसु नक्षत्र हो तो विशेष फल है, पुनर्वसु नक्षत्र व्रतका स्वरूपघटक नहीं है.

अब यहां पूर्वपक्षी शंका करते हैं : व्रतकी पूर्णता पारणा करने पर होती है यह शास्त्रप्रमाणोंसे सिद्ध है, विना पारणा और किसी प्रकार व्रतकी विधि पूर्ण नहीं हो सकती. इसी कारण यह पारणा एकादशीमें पूर्व दिनमें स्वतः प्राप्त है, इसलिये दशमीमें ही पारणा करे यह विधिवचन व्यर्थ होता है. अतएव इसे नियमविधि मानना चाहिये, जिससे सिद्ध यह हुआ कि सूर्योदयव्यापिनी शुद्ध नवमी मिलने पर भी यदि दशमीका क्षय हो, दशमी किसी भी दिन सूर्योदयके समय न हो तो अष्टमीविद्धा नवमीमें ही व्रत करना चाहिये. क्योंकि शुद्ध नवमीके दिन नवमीके बाद अधिक समय तक रहनेवाले दशमीमें पारणा हो सके. यहां यह भी नहीं कह सकते कि अष्टमीविद्धा नवमीमें व्रत करनेका निषेध होनेसे अष्टमीविद्धा नहीं लि जा सकती! क्योंकि निषेध वचनका तात्पर्य जब दशमीकी वृद्धि हो-सूर्योदयसे प्रवृत्त हुई पारणोचित्त दशमी शुद्ध नवमीके दूसरे दिन हो तब अष्टमीविद्धा नवमीका त्याग करना है. (यहां तक शंकाग्रन्थ है)

अब समाधान ग्रन्थ कहते हैं : ‘मैवम्’. ऐसा मत कहो. यह बताओ कि “नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या” इस निषेधविधिके समान “दशम्यामेव पारणम्” वह नियमविधि भी केवल वैष्णव अधिकारियोंके लिये है या सर्व साधारण अधिकारियोंके लिये? यदि कहा जाय कि प्रारम्भमें विद्धानिषेध वैष्णवोंकेलिये किया गया है. अतएव इसके अनुरोधसे “दशम्यामेव पारणम्” यह नियमविधि भी वैष्णवोंकेलिये ही मानना उचित है तो “उपोषणं नवम्यां वै” (उपवास नवमीमें ही करें) यह अंश व्यर्थ होता है, क्योंकि इसके द्वारा किसी अपूर्व कर्मस्वरूपका बोध नहीं हुआ. (कर्मस्वरूपमात्रबोधको विधिः उत्पत्तिविधिः) प्रारम्भमें विद्धानिषेधका विधान पढकर फिर यह पढा गया है. (अर्थात् विद्धानिषेधसे ही शुद्ध

नवमीका बोध हो चुका है) जहां किसीका सामान्य रूपसे बोध हुआ हो वहां विशिष्ट रूपसे बोध करानेके लिये विशिष्ट विधि-निषेधोंका उल्लेख करना सम्भव है. (यहां विशिष्ट शुद्ध नवमीका बोध हो चुका. अब फिर "उपोषणं नवम्यां वै" यह विधि सामान्य रूप मानी जाय तो निरर्थक सिद्ध होती है). सार यह है कि अष्टमीविद्धा नवमीका निषेध करनेसे इसके उत्तर दिनमें 'शुद्ध नवमीके' दिन) व्रत करना चाहिये यह सिद्ध हो जाता है, फिर भी जो "उपोषणं नवम्यां वै" "नवमीमें ही उपवास करें" यह नियम किया है इससे निश्चय होता है कि दशमीकी वृद्धि न हो अर्थात् क्षय हो, केवल नवमीकी ही वृद्धि हो अर्थात् क्षय न हो तो नवमीमें ही उपवास करना चाहिये. यदि नवमीकी वृद्धि न हो अर्थात् क्षय हो तो अष्टमीविद्धामें ही उपवास करना चाहिये. अब "दशम्यवृद्धावपि नवमीवृद्धौ" इस व्यवहित ग्रन्थमें 'अन्यथा दशमी' इस पंक्तिसे हेतु दिखाते हैं-दशमीमें ही पारणा करें इस नियमसे ही नवमीमें उपवास करना सिद्ध हो जाता है फिर भी "उपोषणं नवम्याम्" इस अंशसे जो नवमीमें उपवास करनेका उल्लेख किया है यह व्यर्थ हो जाता है.

शंका: यद्यपि दशमीका क्षय हो तब भी शुद्ध नवमीमें व्रत करना मानने पर पारणा एकादशीमें करनी आवश्यक होता है, जिससे दशमीमें ही पारणा करनी चाहिये यह नियमविधान व्यर्थ हो जाता है.

उत्तर: उपवासका विधान मुख्य है और पारणा इसकी अंगभूत होनेसे गौण है, इसलिये पारणा दिवसवाचक 'दशमी' शब्दका एकादशी पूर्वदिनके रूपसे दशमी एकादशी उभय साधारण गौण अर्थ लिया जाता है. (अर्थात् नवमीकी पारणा जिस तिथिमें हो उसका नाम दशमीविद्धा एकादशी भी दशमी है.

श्रीविट्ठलेशप्रभुचरण कृत रामनवमी निर्णय पूर्ण हुआ.

("दशम्यवद्धावपि नवमीवद्धौ" यह ग्रन्थ जब दशमीका क्षय हो और नवमी दो हों तब पूर्व नवमीको उपोषणमें ग्राह्य सिद्ध करता है ऐसा कई साम्प्रदायिक पण्डितोंका मत है, परन्तु पूर्वपक्षग्रन्थमें "नवमीसत्वेऽपि दशमीक्षये विद्धैव कार्या" इस पंक्तिसे नवमी हो और दशमीका क्षय हो जाय तो अष्टमीविद्धामें व्रत किया जाय ऐसा पूर्वपक्षी उल्लेख है, अतएव इसके निषेधका उत्तरपक्ष ग्रन्थका आशय यही उचित है कि नवमी हो और दशमीका क्षय भी हो तथापि अष्टमीविद्धामें व्रत न कर शुद्ध नवमीमें ही व्रत किया जाय, विद्धैकादशीमें पारणा करें. दूसरे दिन दशमीवत्-विद्धैकादशी मानी है, इसमें पारणा करें. यदि दशमीक्षयमें शुद्धनवमी मिलने पर भी विद्धानवमीमें उपवास स्वीकार किया जाय तो प्रभुचरणोंने जो नवम्युपवास विधिको मुख्यता प्रतिपादितकी है वह व्यर्थ हो जाती है.)

उपर्युक्त निर्णयकी ‘‘एकादशी पूर्वदिनपरत्वं कल्प्यते’’ इस पंक्तिमें ‘एकादशी’ शब्दका अर्थ एकादशी तिथि है, एकादशीव्रत नहीं है, क्योंकि ‘‘दशम्यामेव पारणम्’’ इस व्याख्येय वाक्यमें दशमीमें पारणा करनेका विधान किया है. (तात्पर्य यह है कि जिस दशमीमें पारणाका विधान किया है, तद्वाचक ‘दशमी’ शब्दका गौण अर्थ लेने पर लक्षणासे दशमी सन्निहित विद्धा एकादशी तिथि इसमें प्रविष्ट हो सकती है, न कि दशमीकी व्यवहित व्रतकी एकादशी. ‘‘एकादशी च पूर्वदिनं च एकादशी पूर्वदिने’’ ऐसा द्वन्द्व समास ‘एकादशीपूर्वदिनपरत्वम्’ पंक्तिमें है.

शंका: ‘‘नवमी चाष्टमीविद्धा’’ इस वाक्यमें वेधके स्वरूपका विचार पृथक् नहीं करते हैं, इसलिये ‘‘त्रिभिर्मुहूतैर्विध्यन्ति’’ इस सर्वसामान्य वेधशास्त्रके अनुसार तीन मुहूर्तोंका वेध या गौण पक्ष लिया जाय तो दो मुहूर्तोंका वेध ग्राह्य सिद्ध होता है. अतएव अष्टमी तीन मुहूर्त या दो मुहूर्त भी न हो अर्थात् इससे कम हो तब नवमीविद्धा नहीं होती है. ऐसी दशामें पहली अष्टमीयुक्ता नवमी ही उपवास करने योग्य है यह साबित होता है.

उत्तर: साम्प्रदायिक विद्वान् ऐसी दशामें द्वितीय शुद्ध नवमीका ही आदर करते हैं. उनका आशय यह है : अष्टमीयुक्ता नवमीके त्याग करनेका कारण यह है कि भगवान् श्रीरघुनाथके प्रादुर्भावके दिन अष्टमी नहीं थी. यदि होती तो जैसे वामनद्वादशीमें एकादशीका वेध (वर्तमान रहता) दूषित नहीं है इस प्रकार यहां नवमीमें भी अष्टमीका वेध दूषित न होता. तात्पर्य यह कि निषिद्धका अल्प सम्बन्ध भी दूषक होता है, यह निर्विवाद है. अतएव जन्माष्टमीमें जिस प्रकार कला-काष्ठा सदृश अल्प वेधोंके त्यागके वचन हैं ऐसे अल्प वेधोंके वचन यहां रामनवमीमें नहीं हैं, तथापि समान न्यायसे दूषकका अल्प भी सम्बन्ध हो तो उसका त्याग करना योग्य है. इसके अतिरिक्त ‘‘युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया’’ यह वचन वर्षवृद्धिमें (जन्मोत्सवमें) सूर्योदयव्यापिनी तिथिको ग्राह्य कहता है. अतएव अवतारके समयमें भगवान् श्रीरघुनाथजीके जन्मोत्सव मनानेका व्यवहार सूर्योदयव्यापिनी नवमीमें रहना निश्चित है. इसी न्यायके अनुसार भी अनवातरदशामें भी सूर्योदयव्यापिनी नवमी ही ग्रहण करना योग्य है. यद्यपि ‘‘षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः’’ यह युग्मवाक्य अष्टमी और नवमी के योगका विशेष फल कहता है, परन्तु यह सर्व कार्य साधारण अष्टमी नवमीयोगका निर्णय करनेवाला सामान्य वचन है. वर्षवृद्धिके निर्णय करनेवाले उपर्युक्त विशेष वचनसे और ‘‘नवमी चाष्टमीविद्धा’’ वचनसे इस सामान्य वचनका बाध हो जाता है.

यह शंका भी नहीं कर सकते कि दूसरे दिनके सूर्योदय केवलके समय रहनेवाले नवमी भगवान् श्रीरघुनाथजीके जन्म समय मध्याह्नमें और पूजा समयमें नहीं रहे तो दूषित है?

उत्तर-क्योंकि अष्टमीविद्धा नवमीके त्यागके विधानसे ही इस शंकाका निवारण हो गया है. और इस पक्षमें "यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः" इत्यादि सूर्योदयव्यापिनी तिथिको ग्राह्य बतानेवाले वचनोंको भी अनुकूलता है.

एक शंका यह है कि श्रीरामनवमीमें कला-काष्ठा जैसे अल्प वेधोंके त्यागका विधान करनेवाले वचन न होने पर भी जन्माष्टमीन्यायसे इनका त्याग किया जाता है, इस प्रकार रामनवमीन्यायसे जन्माष्टमीका क्षय होने पर विद्धाजन्माष्टमीमें व्रत करना प्रमाणित हो जायगा, शुद्ध जन्माष्टमीके अभावमें जो नवमी ग्रहण करते हैं यह अयोग्य साबित होगा!

इसका उत्तर यह है कि रामनवमी न्यायकी तो अब कल्पनाकी जा रही है और "पूर्वविद्धा यथा नन्दा" यह एकादशीके अतिदेशका वाक्य तो पहलेसे सिद्ध है, अतएव कल्प्यमान न्यायकी अपेक्षा यह बलिष्ठ है. इसके अनुसार विद्धा एकादशीका क्षय होनेपर जैसे द्वादशीमें व्रत होता है, इसी प्रकार विद्धा जन्माष्टमीका क्षय होने पर नवमीमें व्रत करना चाहिये, ऐसा अतिदेश किया गया है. यहां रामनवमीके विषयमें भी "दशम्यामेव पारणम्" यह पारणावाक्य बलिष्ठ है, इसलिये जैसे विद्धाधिका रामनवमीमें आगे पारणा करनेकेलिये दिन न मिले (न कि दशमी न मिले, क्योंकि दशमी शब्दका दशमी एकादशी दोनों अर्थ है ऐसा प्रभुचरणोंने कहा है) वैसी विद्धाधिका रामनवमीमें है वर्षवृद्धिन्यायका बाध होता है, अन्यत्र नहीं. अतएव ऐसे स्थलमें (जहां अष्टमीका नवमीमें दो मुहूर्तोंसे कम सम्बन्ध है ऐसी विद्धाधिका रामनवमीमें) दूसरे दिन (सूर्योदयव्यापिनी शुद्ध नवमीमें) व्रत करना वर्षवृद्धि न्यायसे प्राप्त है, इसलिये पहले दिन नवमीमें अष्टमीसे विद्धा न बनने पर भी विद्धात्यागका जो कारण (अल्प निषिद्धसम्बन्ध भी दूषक है) यह पहले दिखाया है, उसके विचारसे पूर्व नवमीका त्याग कर दूसरे दिन शुद्ध नवमीमें ही व्रत करना योग्य है. माधवने ऐसे स्थलमें जहां कि शास्त्रोंसे पूरा निर्णय न होता हो, जैसे विद्धाधिका गौरीतृतीया दूसरे दिन दो मुहूर्तोंसे कम हो, शास्त्रीय वचनोंसे व्रत सिद्ध न होने पर शिष्टाचारका अवलम्बन किया है. (शिष्टाचारके अनुसार दूसरे दिन गौरी तृतीयाका व्रत माना है.) विशेषता इतनी है कि पहले दिन गौरीतृतीया विद्धा होनेसे दूसरे दिन कर्मकालसे पूर्व समाप्त होने पर भी दूसरे दिनकी ली जाती है और यहां अल्प अष्टमीसे वेध न बनने पर भी वेधके त्यागका पूर्वोक्त कारण विचारनेसे और वर्षवृद्धि न्यायसे कर्मकालमें न रहती हुई भी दूसरे दिनकी नवमी ली जाती है.

सबका सार यह कि जब अष्टमीविद्धा नवमीका क्षय हो जावे तो ओर कोई उपाय न होनेसे उपवासकेलिये अष्टमीविद्धा नवमी ही ली जावे. पारणाकेलिये दशमी न मिलने पर भी विद्धा अर्थात् पूर्वोक्त विद्धान्यूना ग्राह्य प्रमाणित होती है, क्योंकि दशमीमें पारणा करनेका विधान है, जिसका वास्तविक सार्थकता-उपयोग-केवल यही है. यदि कहीं भी दशमीका अनुरोध न रहे तब तो दशमीमें पारणा करनेका विधान ही व्यर्थ हो जाता है, क्योंकि एकादशीके दिन भी जलसे पारणा कर व्रतकी समाप्तिकी जा सकती है. विद्धान्यूनाके अतिरिक्त और सब अवस्थाओंमें दूसरी ही शुद्ध नवमी ली जाती है. विद्धाका क्षय हो तो विद्धामें ही व्रत करें इस सिद्धान्तके गत्यन्तराभावरूप न्यायका अनुसन्धान नृसिंह चतुदर्शीके प्रसंगमें भी किया जावे. दशमीका क्षय हो तो शुद्ध नवमीमें व्रत करें, विद्धैकादशीमें पारणा करें.

माध्ववैष्णव तो केवल श्रीकृष्णजन्माष्टमीका उपवास आवश्यक मानते हैं, अन्य जयन्तीयोंमें केवल पूजा करनी चाहिये, उपवास करना आवश्यक नहीं यह कहते हैं. प्रमाणके रूपमें इन वचनोंका उल्लेख करते हैं : स्मृत्यर्थसारस्थित भारद्वाज संहिताका वचन "सर्वासां तु जयन्तीनाम्" इत्यादि गरुडपुराणके "चैत्रे मासि" इत्यादि वचन

"नृसिंह मत्स्य कूर्म आदि अवतारोंकी जयन्तीयोंमें भी ब्राह्मणोंके साथ भोजन करें. सत्ययुगमें नृसिंह चतुर्दशी, त्रेतायुगमें श्रीरामनवमी, द्वापरमें श्रीवामन द्वादशी और कलियुगमें केवल श्रीकृष्ण जन्माष्टमी कही गई है".

"श्रीकृष्णजन्माष्टमीके अतिरिक्त दूसरी जयन्तीयोंके उपवास वैष्णवोंको नहीं करने चाहिये. यदि कोई करे तो वे उपवास तामसिक है". (स्कन्दपुराण)

इस माध्व मतमें हमारी सम्मति नहीं है, क्योंकि भगवान् श्रीरामचन्द्र पुरुषोत्तम स्वरूप हैं यह निर्णीत है. और जयन्तीयोंका उपवास करने पर शिष्टाचारका विरोध होता है. कलियुगमें शिष्टाचार प्रबल है और स्मृति इसकी अपेक्षा निर्बल है. यह व्यवस्था पहले दिखाई है.

प्रश्न : चैत्रमें दोलोत्सव और दमनकोत्सव क्यों नहीं किये जाते हैं?

उत्तर यह है कि ये दोनों उत्सव सर्वदेवसाधारण है. सर्व देवपूजकोंके लिये इनका करना आवश्यक है. (श्रीकृष्णके अनन्य भक्तोंके लिये नहीं) व्रत दिनकरोद्योत ग्रन्थमें स्थित वायुपुराणका "संवत्सरकृतार्चायाः" इत्यादि वचन, हेमाद्रि दिनकरोद्योत भविष्योत्तर और

ब्रह्मपुराणमें उमाके प्रार्थना करने पर शंकरने प्रतिवर्ष दोला (झूला) बनाना और उमा महेश्वर युगलको उसमें झुलाना आवश्यक है, यह आज्ञा इन्द्रको दी. इसीसे "ऊर्जेव्रतं मधौ दोलाम्" इस वचनमें जो प्रत्यवाय दिखाया कि कार्तिकमें व्रत, चैत्रमें दोलोत्सव, श्रावणमें तन्तुपूजन (पवित्रार्पण) और चैत्रमें दमनकारोपण (दोना मरवा चढाना) जो नहीं करता है वह नरकमें जाता है. यह भी सर्व देवपूजकोंके लिये है ऐसा समझना चाहिये. अनन्य वैष्णव इसे न करें तो दोष नहीं है.

प्रश्न: तन्तुपूजनमें वैष्णवोंका अत्यन्त आग्रह क्यों है?

उत्तर यह है : यह तन्तुपूजन भगवद्भक्तिरूप रत्नको देनेवाला है. अथवा "ऊर्जेमधौ दोलाम्" इस वचनमें 'मधु' शब्दका अर्थ वसन्त है जिसमें किये जानेवाले दोलोत्सवका निरूपण पहले हो चुका है. मीनसंक्रान्तिमें भी वसन्त मानना ज्योतिर्निबन्ध और सिद्धान्तशिरोमणिको सम्मत है. 'मधु' शब्दका अर्थ वसन्त होनेसे पुनरुक्ति दोषका परिहार हो गया. जिससे फिर चैत्रका उल्लेख योग्य साबित होता है. दमनकारोपण (दोनामरवा चढाना) तो दोनामरवा न मिलनेसे नहीं किया जाता है. असली दोनामरवा उडीसामें ही मिलता है. सब देशोमें तो उग्र गन्धवाला केवल मरवा मिलत है. अतएव दमनकारोपण न करनेमें लेशमात्र भी दोष नहीं है. चैत्रोत्सव पूर्ण हुए.

वैशाखोत्सव : श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणजयन्ती

वैशाख कृष्ण एकादशीके दिन श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणोंकी जयन्तीका उत्सव है. वह राधाजयन्तीके समान सूर्योदयव्यापिनी एकादशीमें करना चाहिये. यदि एकादशी दशमीविद्धा होकर क्षीण हो जावे तो उसीमें उत्सव करना योग्य है. यदि सूर्योदयव्यापिनी एकादशी दो हों तो पहली एकादशीमें उत्सव करना चाहिये. क्योंकि शिष्टाचार ऐसा ही है. ऐसे अन्य भी पुष्टिमार्गीय आचार्योंके जयन्तीयोंके उत्सव पुष्टिमार्गीय वैष्णवोंको अवश्य करने चाहिये. श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध "आचार्य माम्" इत्यादि वचन

"आचार्यको मेरा स्वरूप समझे. कभी अवज्ञा न करे, सेवा मनुष्य बुद्धिसे न करे, गुरु सर्वदेवमय है".

"जहां गुरुकेलिये आक्षेप किये जाते हों या निन्दा होती हो वहां कान बन्द कर ले, या अन्यत्र चले जावे".

शंकराचार्यकृत विष्णुसहस्रनामकी व्याख्यामें 'ब्रह्मैव' इत्यादि व्यासस्मृति वचन "साक्षात् ब्रह्म ही आचार्यके रूपसे स्थित है".

श्वेताश्वतर उपनिषदकी “यस्य देवे” श्रुति “जिसकी देवमें परम भक्ति हो और जैसी देवमें हो वैसी ही गुरुमें भी हो, उस महात्माके हृदयमें ये कहे हुए अर्थ प्रकाशित होते हैं”.

जो मनुष्य किसी सम्प्रदाय विशेषणका अनुसरण करते हुए भी उस सम्प्रदायके आचार्योंके महोत्सव नहीं करते हैं वे श्रद्धाहीन हैं या इन वचनोंका विचार नहीं करते हैं ऐसा समझना चाहिये.

चन्दनयात्रा :

वैशाख शुक्ल 3 याके दिन चन्दनयात्राका उत्सव करना चाहिये. जैसा कि इन वचनोंमें कहा है :

“वैशाख शुक्लपक्षकी तृतीया है. इस दिन मेरे अंग पर सुन्दर चन्दनका लेपन करें”. (स्कन्दपुराण, पुरुषोत्तममाहात्म्य)

“यः पश्यति” वचन “जो मनुष्य वैशाख शुक्ल तृतीयाके दिन चन्दनके लेपसे सुशोभित श्रीकृष्णके दर्शन करता है वह वैकुण्ठको प्राप्त करता है”.(ब्रह्मपुराण पञ्चतिथिमाहात्म्य)

अक्षयतृतीयासे प्रारम्भ कर जब तक उष्णकाल रहे भगवानको व्यजन आदि शीतलोपचार अर्पण करें. इसमें प्रमाण ब्रह्मपुराणका “व्यजनैश्चामरैः” वचन

“अक्षयतृतीयासे प्रारम्भ कर आगे उष्णकालमें व्यजन, चामर, छत्र एवं फल-पुष्प आदि नाना समर्पणीय वन्य वस्तुओंसे भगवानकी प्रीतिका सम्पादन करता हुआ चन्दनका लेप भगवानके श्रीअंग पर करें”.

इस कार्यकेलिये प्रकरणमें विशिष्ट समय नहीं बताया है. इस लिये पांच मुहूर्तोंका प्रातःकाल ही पूजाका समय है, जिसका विवेचन वसन्तपञ्चमीके प्रकरणमें पहले किया है. इसे वहींसे समझना चाहिये. जब दोनों दिन अक्षयतृतीया कर्मकालव्यापिनी हो या कर्मकालके एक अंशमें रहती हो तो दूसरे दिन अक्षयतृतीया माननी चाहिये. यद्यपि परविद्धा तृतीया ग्रहण करनेमें दोनों युग्मवाक्योंका विरोध है. तथापि ब्रह्मवैवर्तपुराणके “रम्भाख्यां वर्जयित्वैकाम्” इस वचनमें रम्भातृतीयाके अतिरिक्त सभी तृतीयाएं परविद्धा श्रेष्ठ है यह कहा है. और स्कन्दपुराणके “कला काष्ठाऽपि” वचनमें द्वितीयाका कला-काष्ठा जैसा अल्प वेध होने पर भी तृतीया त्याज्य है. चतुर्थीयुक्ता तृतीया ही ग्राह्य है यह कहा है इसलिये परविद्धा ही तृतीया व्रतमें लेनी चाहिये. यदि तृतीया विद्धा होकर क्षीण हो जावे तो विद्धा ही व्रतमें ग्राह्य है क्योंकि ओर कोई उपाय नहीं है.

नृसिंहजयन्ती :

वैशाख शुक्ल चतुर्दशीके दिन श्रीनृसिंह जयन्तीका उत्सव करना चाहिये. इसका उल्लेख श्रीनृसिंहपुराण और स्कन्दपुराणके वचनोंमें इस प्रकार है. "वैशाखे शुक्लपक्षे तु" इत्यादि वचन

"वैशाख शुक्ल चतुर्दशीके दिन सायंकाल मेरा जन्म हुआ है. इस चतुर्दशीका व्रत पापोंका नाश करनेवाला और पवित्र है. मेरा सन्तोष करनेवाला यह व्रत प्रतिवर्ष करना चाहिये. "वैशाखस्य चतुर्दश्याम्" वचन "हे ब्राह्मणो! वैशाख शुक्ल चतुर्दशी सोमवारके दिन प्रदोषके समय स्वाती नक्षत्रमें श्रीनृसिंहका अवतार हुआ है".

प्रदोष :

अब यहां 'प्रदोष' शब्दके अर्थका विचार किया जाता है. यद्यपि 'प्रदोष' 'निशामुख' आदि शब्द परिभाषिक समयका भी बोध करा सकते हैं. परन्तु हिरण्यकशिपुको यह वर मिला था कि वह न दिनमें मरेगा, न रात्रिमें. तदनुसार उपर्युक्त वचनोंमें 'प्रदोष' 'निशामुख' आदि शब्दोंका अर्थ सायंसन्ध्या ही मानना चाहिये. वह भी सन्ध्या मुख्य ही ग्रहण करना उचित है. उसका स्वरूप वराहमिहिरने यह कहा है "अर्धास्तमयात्" इत्यादि. सूर्य आधा अस्त हो वहांसे प्रारम्भ कर जब तक तारे प्रकट न हो तब तक सन्ध्या है. ऐसी सक्ध्या अथवा प्राचीनोंने "प्रदोषोऽस्तमयात्" वचनसे जो सूर्यास्तसे प्रारम्भ होनेवाला द्विघटिकात्मक(दो घडियोंका) प्रदोष समय कहा है वह श्रीनृसिंहजीके प्रादुर्भावका समय है ऐसा व्रतदिनकरोद्योतमें लिखा है. अन्य विद्वान् प्रदोषको भगवान् श्रीनृसिंहजीके प्रादुर्भावका समय बताकर आगे बढ जाते हैं परन्तु प्रदोषका निर्णय नहीं करते हैं.

द्वैतनिर्णयकारने तो पहले नृसिंहपुराणके "वैशाखशुक्लपक्षस्य" इस वचनका निर्देश किया, जिसका आशय यह है कि सूर्यके अस्त होने पर श्रीनृसिंह स्तंभसे प्रकट हुए. इसके अनन्तर भविष्यपुराणके वचनका उल्लेख किया, जो सायंकालमें श्रीनृसिंहका प्रादुर्भाव कहता है. फिर स्कन्दपुराणका वचन उद्धृत किया जो प्रदोष समयमें श्रीनृसिंहका प्रादुर्भाव बताता है. नृसिंहपुराणमें सूर्यके अस्त होनेपर प्रादुर्भाव बताया परन्तु कितनी घडियोंके भीतर हुआ यह नहीं कहा. अतएव इसका निर्णय प्रदोष समयमें प्रादुर्भाव बतानेवाले स्कन्दपुराणके वचनसे किया. और 'प्रदोष' पदके अर्थका स्पष्टीकरण भविष्यपुराण वचनके 'सायं' पदसे किया. "नक्षत्रस्पर्शनात् सन्ध्या सायं तत्परतः स्थितम्" इस वचनसे तारे प्रकट होनेसे पूर्व सन्ध्या और बादमें सायंकाल, इस प्रकार सायंकालका स्वरूप समझाया. अन्ततः

सूर्यास्तके अनन्तर तीन घडियोंके भीतर श्रीनृसिंहका प्रादुर्भाव स्वीकार किया. परन्तु योग्य यह है कि सूर्यास्तके समीप समयसे प्रारम्भ कर तारे दीखनेसे पूर्व तक जो सन्ध्या समय रहता है, वही श्रीनृसिंहके प्रादुर्भावका समय है, क्योंकि हिरण्यकशिपुको मारनेसे पूर्व श्रीनृसिंहका प्रादुर्भाव समय रहना उचित है.

इस उत्सवमें ग्राह्य तिथिका सन्देह होनेपर सभी प्रदोष व्यापिनी चतुर्दशीको लेकर निर्णय करते हैं, परन्तु योग्य यह है कि त्रयोदशीके वेधसे रहित सूर्योदयिकी चतुर्दशी वैष्णवोंकेलिये है और केवल प्रदोष व्यापिनी दूसरोंकेलिये. यह निम्नलिखित वचनोंसे प्रमाणित होता है. गोविन्दार्वण और समयमयूखमें स्थित ब्रह्मपुराणके वचन

"श्रीनृसिंहके प्रसन्नताकेलिये त्रयोदशीसे युक्त चतुर्दशीका उपवास न करें, पूर्णिमायुक्त चतुर्दशीका उपवास करे. जो मनुष्य मोहवश त्रयोदशीसे युक्त चतुर्दशीका उपवास करता है वह धन और संतानों से रहित हो जाता है".

इसलिये त्रयोदशीसे युक्त विद्धाचतुर्दशीका त्याग करना चाहिये. नृसिंहपुराणका वचन

"फल चाहनेवाले त्रयोदशीके वेधसे रहित केवल चतुर्दशीका व्रत करे. वैष्णव त्रयोदशीके वेधसे युक्त चतुर्दशीका व्रत न करें".

इस नृसिंहपुराणके वचनका उत्तरार्द्ध कई विद्वान् नहीं लिखते हैं. इसलिये त्रयोदशीके वेधसे रहित चतुर्दशी सबके लिये ग्राह्य है यह निर्णय योग्य मालूम होता है. क्योंकि उपर्युक्त वचन नृसिंह चतुर्दशीसे सम्बन्ध रखनेवाला विशेष वचन है. अन्य व्रतोमें कर्मकालव्यापिसे निर्णय होने पर भी यहां वेधसाहित्यसे निर्णय करना स्मार्तोंकेलिये भी उचित है.

प्रश्न : यहां यह भी नहीं कह सकते कि त्रयोदशीवेधका निषेधक वचन उस अवस्थामें सार्थक है जब कि चतुर्दशी दोनों दिन प्रदोष समयमें हो या दोनों दिन प्रदोष समयमें न हो या दोनों दिन प्रदोषके किसी एक देशमें समान रूपसे रहती हो.

उत्तर : क्योंकि श्रीनृसिंहके प्रादुर्भावका समय बहुत अल्प है जो कि पहले बताया है. इतने अल्प समयमें त्रयोदशीका सर्व तिथि साधारण वेध जो कि तीन या दो मुहूर्तोंका है, बन नहीं सकता. अतएव (यह विशेष वचन न माना जाय तो) इसका उल्लेख ही व्यर्थ हो जाता है. श्रीनृसिंहके प्रादुर्भावका समय तीन या दो मुहूर्तोंका है यह कह नहीं सकते. क्योंकि पहले प्रादुर्भाव समयके विवेचनमें दोष दिखा दिये गये हैं. सर्व तिथि साधारण वेध कला-काष्ठा जैसा अल्प सामयिक माना जाय यह भी ठीक नहीं क्योंकि वैसा कोई वचन नहीं है. अतएव

जहां तक चतुर्दशीका क्षय न हो, प्रातःकाल सूर्योदयके समय जो चतुर्दशी त्रयोदशीके वेधसे रहित हो वह ग्राह्य है. "षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः" इस युग्मवाक्यमें पूर्णिमासे युक्ता चतुर्दशी श्रेष्ठ मानी गई है और "शुक्ला चतुर्दशी ग्राह्या परविद्धा सदा व्रते" इस व्यास वचनमें भी परविद्धा चतुर्दशी व्रतमें ग्राह्य बताई है. चतुर्दशीका क्षय होनेपर तो त्रयोदशी विद्धा ही चतुर्दशी लेनी चाहिये. क्योंकि और कोई गति नहीं है. जन्माष्टमीकी रीति तो यहां नहीं ली जा सकती. आचार्यचरणोंने श्रीकृष्णजन्मोत्सवका समय नवमी है ऐसा वहां दिखाया है. श्रीनृसिंहचतुर्दशीका उत्सव पूर्णिमामें किया जावे ऐसा कहनेवाला यहां कोई वचन नहीं है.

श्रीप्रभुचरणोंने इस व्रतको प्रायिक माना है, जो कि "श्रीनृसिंहजयन्ती व्रत, उत्सव हो तो करें" इस कथनसे मालूम होता है. इस प्रकार प्रायिक(अनित्य) माननेमें कारण माध्वोंके वचन हैं, जिनको श्रीरामनवमीके प्रकरणमें पहले उद्धृत किया है. उनके आशयका विवेचन तत्त्वदीपनिबन्धके सर्वनिर्णय प्रकरणकी व्याख्यामें किया जायगा. वैशाखोत्सव पूर्ण हुए.

ज्येष्ठोत्सव :

ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमाके दिन या इसके समीप ज्येष्ठा नक्षत्रमें ज्येष्ठाभिषेकका उत्सव करना चाहिये. जो कि इन अग्रिम वचनोंमें कहा है.

"हे ब्राह्मणों! प्रतिवर्ष ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाके दिन इन्द्रदेवताको ज्येष्ठा नक्षत्रमें भगवानको स्नान कराया जावे. स्वर्णधर्मानुवाकसे भगवान् पुरुषोत्तमको स्नान करावे. पौर्णमासीके दिन सूक्त मन्त्रोंसे भगवानको यथाविधि स्नान करावे".(ब्रह्मपुराण)

उपर्युक्त वचनोंके 'पौर्णमास्याम्' शब्दमें सामीप्य अर्थका बोध करनेवाली सप्तमी है, इसलिये दोलोत्सवके समान व्यवस्था यहां भी समझनी चाहिये. तिथि और नक्षत्र दोनोंका योग यदि यहां बने तो अति श्रेष्ठ है. ब्रह्मपुराणके "ज्यैष्ठ्यां ज्येष्ठर्क्षयुक्तायाम्" वचनमें लिखा है कि

"ज्येष्ठा नक्षत्रसे युक्त ज्येष्ठकी पूर्णिमामें जो भगवान् पुरुषोत्तमके दर्शन करता है वह इक्कीस सम्बन्धी कुलोंका उद्धार कर विष्णुलोकको जाता है".

स्कन्दपुराणमें एक उपाख्यान है जिसमें भगवान् जगदीशने इन्द्रद्युम्नराजासे कहा कि

"ज्येष्ठकी पूर्णिमाके दिन मेरा अवतार हुआ है, इसलिये यह मेरा पवित्र जन्मदिन है, इस दिन मेरी प्रतिमाका अधिवासन कर महाभिषेककी विधिके अनुसार बडे वैभवके साथ मुझे स्नान करावे".

इस वचनमें केवल ज्यैष्ठी पूर्णिमाका ही उल्लेख है, ज्येष्ठा नक्षत्रका उल्लेख नहीं है, परन्तु प्रकरण देखनेसे मालूम होता है कि पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जो भगवान् जगन्नाथ स्थित हैं केवल उन्हींसे इस महाभिषेक विधिका सम्बन्ध है, क्योंकि इसी प्रकरणमें "न्यग्रोधादुत्तरे कूप:" इस वचनसे भगवानने कहा है कि

"वट वृक्षसे उत्तरमें एक कुआ है जिसमें सब तीर्थोंका निवास है. मैने पहले स्नानकेलिये इस कूपको बनाया था".

उपर्युक्त निर्णयसे इन ब्रह्मपुराण और स्कन्द पुराण के वचनोंका भी स्पष्टीकरण हो जाता है. ब्रह्मपुराणका "ऋक्षाभावे पौर्णमास्याम्" वचन

"वह पुरुषोत्तम क्षेत्रमें स्थित भगवान् जगन्नाथकी प्रसन्नताकेलिए उसी प्रकार करना चाहिये".

स्कन्दपुराणका "पौर्णमास्यां प्रकुर्वीत" वचन

"यदि नक्षत्र न मिले तो केवल पौर्णमासी ली जावे".

उपर्युक्त वचन पुरुषोत्तम क्षेत्र परक है यह स्वीकार न हो तो पूर्णिमा और ज्येष्ठा नक्षत्र दोनों न मीले तो केवल नक्षत्रमें उत्सव कीया जाय, क्योंकि कलियुगमें शिष्टाचार बलवान् है, जिसका उपपादन पहले हो चुका है.

स्नानसे अवशिष्ट रहे जलका भक्तोंको अपने अंगों पर सेचन करना चाहिये. इसका उल्लेख ब्रह्मपुराणके वचनोंमें इस प्रकार है.

"भगवान् श्रीकृष्णके स्नानावशिष्ट जलसे शरीरका सेचन करना चाहिये. इससे जो स्त्रियां बांझ, मृतवत्सा, सौभाग्यहीना, सूर्यादि ग्रहोंसे पीडिता, राक्षसी, डाकिनी आदिके आवेशवालीं या व्याधिग्रस्ता हों वे इन दु:खोंसे रहित हो जाती हैं और अभीष्ट फलको पाती हैं. जिसे पुत्रोंकी इच्छा हो उसे पुत्र मिलते हैं, सांसारिक सुख चाहनेवालीको सौभाग्य मिलता है, रोगसे पीडित रोगसे मुक्त होती हैं, धन चाहनेवालीको धन मिलता है. पृथ्वी पर जितने भी पवित्र जल हैं, स्नानाविशिष्ट जलकी सोलहकीं कलाको भी नहीं पा सकते है. अतएव हे ब्राह्मणों! श्रीकृष्णके स्नानाविशिष्ट जलसे सब अंगों पर सेचन करना चाहिये. वह सब मनोरथोंको देनेवाला है".

ज्येष्ठोत्सव पूर्ण हुए.

आषाढोत्सव : रथोत्सव

आषाढमें रथोत्सव होता है. जिसका उल्लेख स्कन्दपुराणमें है. “गुण्डिचाख्याम्” इत्यादि वचन

“हे राजन्! मेरी ‘गुण्डिचा’ महायात्राका उत्सव करना चाहिये जिसके कीर्तनसे मनुष्य पापोंसे मुक्त होता है. माघकी पञ्चमी और चैत्र शुक्ला अष्टमी इस ‘गुण्डिचा’ महोत्सवकेलिये श्रेष्ठ समय है. पुष्यनक्षत्रसे युक्ता आषाढ शुक्ला द्वितीया विशेषतः मोक्ष देनेवाली है. यदि पुष्यनक्षत्र न मिले तो यह उत्सव मेरी प्रसन्नताकेलिये केवल द्वितीयामें भी किया जाय. आषाढ शुक्ल पक्षकी पुष्य नक्षत्रसे युक्त द्वितीयाके दिन सुभद्रा (महालक्ष्मी) और बलरामके साथ मुझे रथमें बैठा कर महोत्सव करें और बहुत ब्राह्मणोंका संतोष करें”.

इसके अनन्तर “गुण्डिचामण्डपे नाम यत्राहमजनं पुरा” इत्यादि वचनोंसे गुण्डिचामण्डपकी प्रशंसाकी है. और “दिनानि नव यास्याभि” इत्यादि वचनोंसे नव दिनों तक गुण्डिचामण्डप जानेके लिये है और यात्राका अंग है. शिष्ट लोग गुण्डिचामण्डप न ले जाते हुए भगवानको केवल रथारोहण कराते हैं. इस गुण्डिचा महोत्सवकेलिये पञ्चमी आदि अनेक काल वहां बताये हैं, और नक्षत्रकी प्रधानताका समर्थन पहले हो चुका है, इसलिये इसका भी निर्णय होता है कि ज्येष्ठाभिषेकके समान पुष्य नक्षत्रमें उत्सव करना उचित है. विशेष विस्तार करना योग्य नहीं.

शयनोत्सव :

आषाढ शुक्ल एकादशीके दिन शयनोत्सव शास्त्रोमें बताया है. परन्तु साम्प्रदायिक व्यवहार न होनेसे नहीं किया जाता है. अतएव विवेचन भी नहीं किया जाता है. यदि कोई श्रद्धावश करे तो मलमासका त्याग कर शुद्ध मासमें करे और प्रबोधिनीके निर्णयके अनुसार एकादशी ग्रहण करें.

आषाढोत्सव पूर्ण हुए.

श्रावणोत्सव : पवित्रारोपणका उत्सव

श्रावण शुक्ल एकादशीके दिन पवित्रारोपणका उत्सव करना चाहिये. इसका उल्लेख हेमाद्रि-स्थित विष्णुरहस्यमें है. “श्रावणस्य सिते पक्षे” इत्यादि वचन

“श्रावण शुक्ल एकादशीके दिन कर्कसंक्रान्तिमें या द्वादशी पञ्चमी पूर्णिमा इनमेंसे किसी एक दिन, जिस दिन अनुकूल हो उस दिन भगवान् वासुदेवकी पवित्र धारण करावे”.

मुख्य समय न मिलने पर देवोत्थापनसे पूर्व सभी मासोमें हो सकता है. यहां कर्कसंक्रान्तिका उल्लेख मलमासके संग्रहके लिये है, परन्तु शिष्ट लोग मलमासका आदर नहीं करते हैं क्योंकि शुद्ध श्रावणमें हो सकता है. न इसमें कोई शंका ही है. अधिक मास होने पर सम्भव है शुद्ध श्रावण शुक्लमें कर्कसंक्रान्ति न मिल कर सिंहसंक्रान्ति मिले तो एक अंशमें कर्क होगा, मास, तिथि आदि ओर सब अंश तो पूर्ववचनोक्त ही रहेगा. "श्रावणस्य सिते पक्षे" इस उपर्युक्त वचनमें प्रथम 'द्वादशी' शब्दका अर्थ एकादशी है. यदि ऐसा न हो तो "द्वादश्यां श्रवणे वाऽपि" यह दुबारा 'द्वादशी' शब्दका प्रयोग व्यर्थ हो जाता है. प्रथम 'द्वादशी' शब्दका एकादशी अर्थ माननेमें लक्षणा करनी पडेगी यह आपत्ति भी नहीं है, क्योंकि इन अग्रिम कई वचनोंमें 'द्वादशी' शब्दका उपयोग एकादशीकेलिये किया है. हरिवल्लभसुधोदय स्थित पद्मपुराणके "पक्षे पक्षे नृपश्रेष्ठ" इत्यादि वचन "हे राजश्रेष्ठ! प्रत्येक पक्षमें तू दशमीके वेधसे रहित द्वादशीका (एकादशीका) यथाविधि व्रत करता है. जैसे नेत्रहीन शरीर, पतिहीना नारी और वैष्णवोंसे हीन देश मालूम होता है वैसे ही दशमीविद्धा द्वादशी है (एकादशी है)". निर्णयसिन्धुस्थित कूर्मपुराणका वचन "दशम्यनुगता" इत्यादि. "दशमीविद्धा द्वादशी (एकादशी) फलको नष्ट करती है". ऐसे ही वचन वराहपुराणमें भी है जिनमें एकादशीकेलिये 'द्वादशी' शब्दका प्रयोग किया है. इसमें निश्चय होता है कि 'द्वादशी' शब्द एकादशीका पर्याय है. लक्षणा किसी प्रयोजनसे होती है और यहां कोई प्रयोजन नहीं है. इसलिये लक्षणा नहीं मान सकते. यदि लक्षणा मानी भी जाय तो हमारी कोई हानि नहीं, क्योंकि लक्षणासे भी बोध तो एकादशीका ही होगा.

शंका : पद्मपुराणके उपर्युक्त वचन उन्मीलिनी द्वादशीके प्रकरणमें हैं. इसलिये प्रकरणविरोध होनेसे इनमें वर्तमान 'द्वादशी' शब्दका एकादशी अर्थ नहीं हो सकता.

उत्तर : यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि इनमें दशमीवेध रहित द्वादशी व्रत जागरणके साथ करनेका उल्लेख है. यह दशमीवेध और जागरण 'द्वादशी' शब्दका एकादशी अर्थ लिया जाय तभी घटित होता है. इस अर्थ प्रकाशन सामर्थ्यरूप लिङ्गसे प्रकरणका बाध हो जाता है. ("प्रकरणके अपेक्षा लिङ्ग बलवान् है" यह पूर्वमीमांसाके 'श्रुतिलिङ्ग' सूत्रसे सिद्ध है) इसके अतिरिक्त "सम्पूर्णैकादशी यत्र" इस उन्मीलिनीके लक्षणमें दूसरे दिनमें तो दशमीवेध सर्वथा असम्भव है, और पहले दिन सम्भवित अरुणोदयादि वेधोंके निषेधमें उपर्युक्त वेधनिषेधका तात्पर्य माना जाय तो 'द्वादशी' शब्दका अर्थ अन्ततः एकादशी ही सिद्ध हुआ. क्योंकि पहले दिन तो द्वादशीका लेश भी नहीं है. यह भी नहीं कह सकते कि द्वादशी शब्दका शक्य अर्थसे भिन्न अर्थ स्वीकार करने पर कोई सीमा न रहेगी. क्योंकि जहां कोई सन्निहित पदोंका अर्थ या पुनरुक्ति आदि तात्पर्यग्राहक होता है वहां तदनुकूल शक्य भिन्न अर्थ स्वीकार किया जाता है. उपर्युक्त वचनमें द्वितीय द्वादशी शब्द अनुवादक

है, यह कहना भी अयोग्य है, क्योंकि इसमें कोई प्रमाण नहीं है. किसीने यह कहा कि द्वितीय 'द्वादशी' शब्दके साथ 'श्रवण' शब्द है. इसलिये इसका अर्थ श्रवणद्वादशी है और यह पवित्रारोपणके लिये मुख्यतर समय है और इसमें पूर्व कही गई श्रावण शुक्ला द्वादशी मुख्यतम समय है —यह भी आपातरमणीय है. क्योंकि "सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत्" इस वचनमें जैसे तारतम्यबोधक 'पुण्यतम' शब्द है इस प्रकार यहां मुख्यतम, मुख्यतर आदि तारतम्य बतानेवाले शब्द नहीं हैं. अतएव ऐसे कल्पना करनेमें कोई प्रमाण नहीं. यदि 'द्वादशी' पदके साथ 'श्रवण' पदका सम्बन्ध होनेसे अन्य मासमें आनेवाली श्रवणद्वादशी ली जाती है तो पञ्चमी पूर्णिमा आदि तिथियां भी श्रवणातिरिक्त मासोंकी ली जा सकेगी. श्रावणका त्याग हो जायेगा. एवं द्वितीय द्वादशी शब्दके अनुवादक होने पर शास्त्रमें अनुवादक अप्रामाण्य प्रविष्ट हो जायेगा. अन्य विधेय अंशके अभावमें केवल विधिका अनुवाद कहीं भी देखा नहीं. मन्त्रस्तुत्या देवताओंको मन्त्रमयी न मान कर विग्रहवती (शरीरधारिणी) माननेवाले व्यास आदि आचार्योंने निषेध स्थलमें भी अनुवाद स्वीकार नहीं किया है. जैमिनिकी अपेक्षा व्यास दोनों प्रकारसे गुरु हैं (1.जैमिनिके गुरु होनेसे और 2.प्रधान सिद्धान्त वेदान्तके प्रवर्तक होनेसे). आचार्यचरणोंने भी ऐसा ही व्यासमताविरुद्ध जैमिनिमतका प्रामाण्य स्वीकार किया है. सार यह कि एकादशी मुख्य समय है. इसमें न हो सके तो द्वादशी आदि तिथियां ग्रहण करनी चाहिये यही योग्य है. जो इस प्रकार नहीं मानते हैं वे लोक अवश्य ज्ञानशून्य हैं.

उपर्युक्त वचनमें जो "आनुकूल्येषु कर्तव्यम्" लिखा है इसका तात्पर्य पवित्रारोपणके एकादशीमें दशमीवेधका निषेध करना है. यद्यपि दशमीवेधका निषेध उपवासमें आवश्यक है (न कि पवित्रारोपणमें) तथापि विष्णुधर्मोत्तरमें नारदने जब वेधदोषका कारण पूछा तो भगवानने "दशम्यामसुरा जाताः" इस वचनसे यह दिखाया कि दशमीमें असुरोंका जन्म हुआ है और एकादशीमें देवोंका, इसलिये जो जिनका जन्मदिन है वह उनको बढानेवाला है. यह कारण उपवासके समान अन्य पुण्य कार्योंमें भी समान है. इसलिये पवित्रारोपणमें भी दशमीवेधका त्याग करना अवश्य अभीष्ट है. अन्यथा 'आनुकूल्येषु' इस बहुवचनसे सब प्रकारके आनुकूल्योंका विधान न करते. हरिवासर होनेसे हरिका आनुकूल्य तो इस एकादशीमें ही सिद्ध होता है. अपेक्षित फलके लाभके अनुकूलता भी इसमें है. इस फलानुकूल्यके विचारसे ही पवित्रा एकादशीमें भद्रारहित समयका भी संग्रह हो गया. "भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा" इस वचनकी व्याख्या करते हुए दिनकरोद्योत आदि निबन्धोमें यह कहा है कि 'श्रावणी' पदसे श्रावण मासमें होनेवाले अन्य कार्य भी किये जाते है, केवल रक्षाबन्धन ही नहीं. अतएव पवित्रारोपणमें भी भद्रा त्याज्य है, व्यतिपात, वैधृति आदि योग पुण्यजनक हैं, इनका ऐसे पुण्य कार्योंमें निषेध नहीं है.

यह पवित्रारोपण नित्य भी है और काम्य भी है यह दिनकरोद्योत हेमाद्रि और ब्रह्मपुराणमें स्पष्ट है.

“ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य स्त्रियां और शूद्र अपने धर्ममें तत्पर रहते हुए सभी भक्तिपूर्वक पवित्र समर्पण करें. हे मुनिश्रेष्ठ! जो मनुष्ये पवित्राका समर्पण नहीं करता है उसकी सम्पूर्ण वार्षिकी पूजा निष्फल हो जाती है. अतएव विष्णुभक्त मनुष्य प्रतिवर्ष विष्णुको पवित्रसमर्पण करें. यह पवित्रसमर्पण विष्णुके भक्तिरत्नको देता है, स्त्रीयोंको और पुरुषोंको कीर्ति देता है, पुण्यजनक है, सुखसंपत्ति और धनको देता है”.

इस पवित्रका विधान रामार्चनचन्द्रिकामें प्रयोगसारसे उद्धृत कर इस प्रकार कहा है

“एक ‘पवित्र’ नामका नाग था, जो कि वासुकिका छोटा भाई था, उसने देवोंके सौ वर्ष तक तप कर शंकरको प्रसन्न किया और वर पाकर इनके कण्ठका आभूषण बना. शंकरने ‘तथास्तु’ कहकर कण्ठमें धारण करते हुए यह दूसरा वर दिया कि जैसे मैंने तेरा आदर किया (कण्ठमें धारण किया) इस प्रकार जो तेरा आदर न करें उनके किये हुए जप होम आदिका फल अवश्य तुमको प्राप्त हो. नित्य नैमित्तिक कार्योमें प्रयत्न करनेवाले मनुष्य इस श्रावण मासमें ही विष्णुदेवताका श्रवण नक्षत्रमें तेरी आराधना करें”.

यह पवित्रविधान तान्त्रिकोंके लिये आवश्यक है, अनन्यभक्तोंके लिये नहीं है. अतएव जितना आवश्यक है उतना हि लिया जाता है. आवश्यक यह है कि भक्तोंका भाव अपने मूलभूत सत्त्व, रज और तम इन त्रिगुणोमें क्षोभ होकर परस्पर मिश्रण होने पर नव प्रकारका हो जाता है. अतः इस भावके अनुसार पहले तीन तन्तु लेकर इनको तिहरे कर नव बनावें. वर्ष भरकी पूजाकी सफलता इसका फल है, इसलिये एक वर्षके दिनोंकी संख्याके अनुसार तीनसौ साठ वलयाकार आवृत्तियां इसकी करें. नागका आकार बननेकेलिये ग्रन्थियां लगावें. देवके सन्निधानकेलिये अधिवासन करें.

“पवित्रा सोना, चांदी, ताम्बा, अलसी, रेशम, कमल, कुश, कासडा और कपास इनके तन्तुओंसे बनाये, जो कि तन्तु ब्राह्मणजातिकी स्त्रीके द्वारा या कन्याके द्वारा कातें गये हों, न कि व्यभिचारिणी आदि दूषित स्त्रियोंके द्वारा. सत्य युगमें पवित्र मणिमय, त्रेतायुगमें सुवर्णमय, द्वापर युगमें रेशमी और कलियुगमें कपासका कहा है. स्नान कर त्रिगुणित सूत्रको फिर त्रिगुणित कर शुद्ध करे. पञ्चगव्यसे पवित्र कर जलसे प्रक्षालन करे. ऐसे (360) तीनसौ साठ तारोंका जो पवित्रा बनाया जावे वह उत्तम है, (270) दोसौ सत्तर तारोंका मध्यम है और (180) एकसौ अस्सी तारोंका कनिष्ठ है. (100) सौ गांठोंका पवित्रा उत्तम, (50) पचास गांठोंका मध्यम और (36) छत्तिस गांठोंका कनिष्ठ होता है”.

गाठें :

कुछ आचार्य उत्तम मध्यम और कनिष्ठ पवित्रोमें छत्तीस, चौबीस और बारह गांठें क्रमशः आवश्यक मानते हैं. एवं कोई मुनि चौबीस, बारह और आठ गांठें आवश्यक मानते हैं. हेमाद्रिस्थित विष्णुरहस्यवचन "अष्टोत्तरशतं कुर्यात्" इत्यादि "उत्तम पवित्रमें (108) एकसौ आठ ग्रन्थियां, मध्यम पवित्रमें (54) चौपन और कनिष्ठमें (27) सत्ताईस बनाई जावें".

"पूर्णिमाके दिन भगवानकेलिये कन्या पतिव्रता स्त्रीने तैयार किया पवित्र समर्पण करें. अनेक रंगोके रेशमी तारोंसे बने पवित्र अर्पण करे. दक्षिणाके साथ ऐसे पवित्रे ब्राह्मणोंको देवें. स्वयं भी भक्तिपूर्वक कण्ठ या हाथमें धारण करें. ब्राह्मणोंकेलिये जो पवित्रोंका दान किया जाता है उसका अक्षय पुण्य होता है".(वाराहपुराणके चातुर्मास्य-माहात्म्यका "पूर्णिमायां ततः कुर्यात्" इत्यादि वचन)

"उत्तम पवित्रमें अंगुष्ठ पर्वके समान लम्बा ग्रन्थि बनावे, मध्यम पवित्रमें इसकी आधी लम्बा और कनिष्ठ पवित्रमें आधीकी आधी लम्बा ग्रन्थि बनावें, ग्रन्थियां सभी गोल और सुन्दर बनावें. विषम संख्याकी ग्रन्थियां कहीं न बनावें. शोभारहित सूत्रोंके दानसे व्रत कर्ताको अशुभ फल मिलता है. अतएव भक्तिपूर्वक सुन्दर पवित्र बनावें. केसर गोरोचन और कपूर मिला कर उससे सूतको रंगे. ऐसा पवित्र देशकालका विचार कर अपने इष्ट देवको महीना पन्द्रह दिन, तीन या एक अहोरात्र धारण करावें. बादमें पवित्र गन्ध आदिके साथ अपने गुरुको समर्पण करें. स्वर्ण वस्त्र अनुलेपनोंसे गुरुकी भक्तिपूर्वक पूजा करें. यदि किसी भी प्रकार समय पर पवित्रारोपण न कर सके तो वह अपने इष्ट देवके मूलमन्त्रका दश हजार जप करें और स्तुति करें".(रामार्चनचन्द्रिका)

प्रमादवश पवित्र समर्पण न करने पर यह प्रायश्चित बताया है. गन्ध पुष्प आदिसे पवित्रका संस्कार करना अधिवासन है. (360) तीनसौ साठ सूत्रोंमें एक वर्षकी दैनन्दिन पूजाओंका सामान्य रूपसे आरोप किया जाता है. इस पवित्रके अवयवस्वरूप सूत्रोमें वर्तमान पूर्वोक्त पूजाओंकी आधिदैविकता सिद्ध होनेकेलिये अधिवासन आवश्यक है. सूत्रोंकी अधिष्ठात्री देवताएं हमें सम्मत नहीं है, क्योंकि उनका अन्य सम्प्रदायोंसे सम्बन्ध है.

रक्षाबन्धन :

श्रावण शुक्ल पौर्णमासीके दिन रक्षाबन्धनका उत्सव होता है. यह भद्रारहित पौर्णमासीमें करना चाहिये. इसका उल्लेख इन अग्रिम वचनोंमें है.

“रक्षाबन्धन और होली दोनों भद्रामें करना उचित नहीं. भद्रामें किया गया रक्षाबन्धन राजाका और होलिका-दाह राष्ट्रका नाश करता है”.

“प्रतिपदाके दिन रक्षाबन्धन, दशमीके दिन बलिदान और द्वितीया के दिन गोक्रीडा (गोवर्द्धनोत्सव) हो तो वह देश नष्ट हो जाता है”.

श्रीवल्लभाचार्यचरण और विट्ठलेश प्रभुचरणों के कृपाबलको पाकर आप दोनोंकी वाणीका विचार किया. श्रीप्रभुचरणोंके पौत्रोंके द्वारा किये गये निर्णयोंसे सम्प्रदायका निश्चित ज्ञान प्राप्त किया. जब कि सम्प्रदायको न जाननेवाले मनुष्योंकी शङ्काओंसे पुष्टिमार्गीय जीव व्याकुल हो गये, तब श्रीव्रजरायजीके द्वारा बनाई गई ‘संवत्सरोत्सवकल्पलताको’ विशद करनेके लिये मैने वार्षिक उत्सवोंका यह समयनिर्णय बनाया. इससे प्रभु प्रसन्न हों. जो अज्ञानवश कहा हो उसकेलिये क्षमा प्रदान करें, जिससे मुझमें अपराधोंका संचय न हो.

श्रीविट्ठलेशप्रभुचरणोंके चरणारविन्दोंके मकरन्दके लाभसे जिसने

‘पुरुषोत्तम’ नाम पाया है तद्रचित

यह वार्षिक उत्सवोंका समय निर्णय पूर्ण हुआ.